अध्याय २

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु

इस अध्याय में बताया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ही साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। अतएव ब्रह्मज्योति श्री चैतन्य महाप्रभु की शारीरिक कान्ति है और हर जीव के हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमात्मा उनके अंश-स्वरूप हैं। इस सम्बन्ध में *पुरुष-अवतारों* की भी व्याख्या की गई है। महाविष्णु समस्त बद्धजीवों के आगार हैं, किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों में इसकी पुष्टि हुई है कि भगवान् कृष्ण ही परम स्रोत हैं और असंख्य विस्तारों के उद्गम हैं। उन असंख्य विस्तारों में नारायण भी सम्मिलित हैं, जो कि मायावादी दार्शनिकों द्वारा सामान्यतया परम सत्य के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। भगवान् के *प्राभव* तथा *वैभव* प्रकाशों की एवं अंशावतारों तथा शक्त्यावतारों की भी व्याख्या की गई है। भगवान् कृष्ण के बाल्यकाल तथा युवावस्था की चर्चा की गई है और यह बतलाया गया है कि उनकी युवावस्था के प्रारम्भ में उनकी जो आयु है, वही उनका शाश्वत रूप है।

आध्यात्मिक आकाश में असंख्य आध्यात्मिक ग्रह हैं, जिन्हें वैकुण्ठ कहते हैं और जो भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी तरह से असंख्य भौतिक ब्रह्माण्ड उनकी बहिरंगा शक्ति से और सारे जीव उनकी तटस्था शक्ति से प्रकट होते हैं। चूँकि श्रीकृष्ण चैतन्य, भगवान् कृष्ण से भिन्न नहीं हैं, अतएव वे समस्त कारणों के कारण हैं, कोई कारण उनसे परे नहीं है। वे सनातन हैं और उनका स्वरूप आध्यात्मिक है। चैतन्य महाप्रभु प्रत्यक्षत: भगवान् कृष्ण हैं, जैसाकि प्रामाणिक शास्त्रों के साक्ष्यों से सिद्ध होता है। इस अध्याय में बल दिया गया है कि जो भक्त कृष्णभावनामृत में अग्रसर होना

चाहता है, उसे कृष्ण के साकार रूप, उनकी तीन प्रमुख शक्तियाँ, उनकी लीलाओं तथा उनके साथ जीवों के सम्बन्ध का ज्ञान होना चाहिए।

श्री-चैतन्य-प्रभुं वन्दे बालोऽपि यदनुग्रहात् ।
तरेन्नाना-मत-ग्राह-व्याप्तं सिद्धान्त-सागरम् ॥ १ ॥

श्री-चैतन्य-प्रभुम्—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **वन्दे**—मैं नमस्कार करता हूँ; **बालः**—एक अज्ञानी बालक; **अपि**—भी; **यत्**—जिसकी; **अनुग्रहात्**—दया से; **तरेत्**—पार कर सके; **नाना**—विभिन्न; **मत**—मत (प्रस्ताव); **ग्राह**—घड़ियाल, मगर; **व्याप्तम्**—से भरे हुए; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त, निष्कर्ष; **सागरम्**—सागर।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से एक अबोध बालक भी निर्णायक सत्य रूपी सागर को पार कर सकता है, जो विभिन्न सिद्धान्त रूपी मगरों से भरा हुआ है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से एक अनुभवहीन और अशिक्षित बालक को भी उस अज्ञान के सागर से उबारा जा सकता है, जो भयावह जलचरों के तुल्य विविध दार्शनिक सिद्धान्तों से भरा है। बुद्ध का दर्शन, ज्ञानियों का तर्क, पतञ्जलि तथा गौतम की योग-पद्धतियाँ तथा कणाद, कपिल एवं दत्तात्रेय जैसे दार्शनिकों की प्रणालियाँ अविद्या के सागर में खतरनाक जीवों के तुल्य हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से इन साम्प्रदायिक मतों से बचकर तथा कृष्ण के चरणकमलों को जीवन के चरम लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर ज्ञान के सार की वास्तविक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बद्धजीवों पर उदार अनुग्रह के लिए चलो हम सब श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करें।

कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तन-कला-पाथोजनि-भ्राजिता
सद्भक्तावलि-हंस-चक्र-मधुप-श्रेणी-विहारास्पदम् ।

कर्णानन्दि-कल-ध्वनिर्वहतु मे जिह्वा-मरु-प्राङ्गणे
श्री-चैतन्य दया-निधे तव लसल्लीला-सुधा-स्वर्धुनी ॥ २॥
कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तन-कला-पाथोजनि-भ्राजिता
सद्भक्तावलि-हंस-चक्र-मधुप-श्रेणी-विहारास्पदम् ।
कर्णानन्दि-कल-ध्वनिर्वहतु मे जिह्वा-मरु-प्राङ्गणे
श्री-चैतन्य दया-निधे तव लसल्लीला-सुधा-स्वर्धुनी ॥ २॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का; **उत्कीर्तन**—संकीर्तन; **गान**—गान; **नर्तन**—नृत्य; **कला**—अन्य कलाओं का; **पाथः-जनि**—कमलों सहित; **भ्राजिता**—अलंकृत; **सत्-भक्त**—शुद्ध भक्तों की; **आवलि**—पंक्तियाँ; **हंस**—राजहंसों की; **चक्र**—चक्रवाक पक्षी; **मधु-प**—मधुमक्खियाँ; **श्रेणी**—झुंड की भाँति; **विहार**—विहार के; **आस्पदम्**—निवास; **कर्ण-आनन्दि**—कर्णप्रिय; **कल**—मधुर; **ध्वनिः**—ध्वनि; **वहतु**—बहने दो; **मे**—मेरी; **जिह्वा**—जिह्वा; **मरु**—मरुस्थल जैसी; **प्राङ्गणे**—प्रांगण में; **श्री-चैतन्य दया-निधे**—दयानिधि श्री चैतन्य महाप्रभु से; **तव**—आपका; **लसत्**—चमकने वाला; **लीला-सुधा**—लीलामृत; **स्वर्धुनी**—गंगा।

अनुवाद

हे मेरे दयालु भगवान् श्री चैतन्य! आपकी दिव्य लीलाओं का अमृततुल्य गंगाजल मेरी मरुस्थल जैसी जीभ पर बहता रहे। कृष्ण के पवित्र नाम का उच्च स्वर से कीर्तन, गान, नर्तन रूपी वे कमल के फूल जो अनन्य भक्तों के आनन्द-धाम हैं, इस जल को सुशोभित करने वाले हैं। ये भक्त हंसों, चक्रवाकों तथा भ्रमरों के तुल्य हैं। नदी के प्रवाह से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है, जो उनके कानों को आनन्दित करती है।

तात्पर्य

हमारी जीभें हमेशा व्यर्थ की ध्वनियाँ करने में लगी रहती हैं, जो हमें दिव्य शान्ति का अनुभव करने में किसी तरह की सहायता नहीं करतीं। जीभ की तुलना मरुस्थल से की गई है, क्योंकि मरुस्थल को उर्वर तथा फलदायक बनाने के लिए निरन्तर ताजे जल की आपूर्ति की आवश्यकता होती है। जल एक ऐसी वस्तु है, जिसकी मरुस्थल में सर्वाधिक आवश्यकता होती है। कला, संस्कृति, राजनीति, सामाजिकता, शुष्क दर्शन, कविता इत्यादि संसारी विषयों से मिलने वाला क्षणिक आनन्द जल की बूँद जैसा है, क्योंकि इन विषयों में

दिव्य आनन्द के गुणात्मक लक्षण दिखाई देने पर भी ये भौतिक गुणों में निमग्न रहते हैं। इसीलिए न तो सामूहिक रूप से न व्यक्तिगत रूप से वे मरुस्थल-तुल्य जीभ की असीम आवश्यकताओं की तुष्टि कर पाते हैं। अतएव विभिन्न सम्मेलनों में उच्च स्वर में बोलते रहने पर भी मरुस्थल तुल्य जीभ सूखी की सूखी ही रहती है। इसी कारण से विश्व के सभी लोगों को चाहिए कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को बुलायें, जिनकी तुलना उन हंसों से की जाती है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के सुन्दर चरणकमलों के चारों ओर तैरते रहते हैं या उन मधुमक्खियों से की जाती है, जो उनके चरणकमलों के आसपास मधु की खोज में दिव्य आनन्द के साथ गुंजार करती रहती हैं। भौतिक सुख की शुष्कता उन तथाकथित दार्शनिकों द्वारा आर्द्र (नम) नहीं हो सकती, जो ब्रह्म, मुक्ति तथा ऐसी ही काल्पनिक शुष्क वस्तुओं की रट लगाते हैं। आत्मा की आवश्यकता भिन्न है। आत्मा को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा तथा उनके अनेक प्रामाणिक भक्तों द्वारा ही सान्त्वना प्रदान की जा सकती है, जो नकली महाप्रभु बनने के लिए भगवान् के चरणकमलों को नहीं छोड़ते, अपितु उन मधुमक्खियों की भाँति उनके चरणकमलों से लिपटे रहते हैं, जो मधु से सिक्त कमल के फूल को कभी नहीं छोड़तीं।

चैतन्य महाप्रभु का कृष्णभावनामृत आन्दोलन भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नृत्य और गायन से परिपूर्ण है। यहाँ पर इसकी तुलना गंगा के शुद्ध जल से की गई है, जो कमल के फूलों से भरा रहता है। इन कमलों के भोक्ता शुद्ध भक्त हैं, जो भ्रमरों और हंसों के समान हैं। वे स्वर्गलोक की नदी गंगा के प्रवाह की भाँति कीर्तन करते रहते हैं। लेखक की कामना है कि ऐसी मधुर उठती तरंगें उसकी जीभ को सिक्त कर दें। वह विनीत होकर अपनी तुलना उन भौतिकतावादी व्यक्तियों से करते हैं, जो सदा शुष्क बातों में लगे रहते हैं, जिनसे कोई तुष्टि नहीं मिल पाती। यदि वे अपनी शुष्क जीभों को भगवन्नाम के कीर्तन—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे में लगायें, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किया, तो उन्हें आस्वादन करने के लिए मधुर अमृत प्राप्त हो जायेगा और वे आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ ३॥

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ ३॥

जय जय—जय हो; **श्री-चैतन्य**—भगवान् चैतन्य की; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—प्रभु नित्यानन्द की; **जय**—जय हो; **अद्वैत-चन्द्र**—अद्वैताचार्य की; **जय**—जय हो; **गौर-भक्त-वृन्द**—भगवान् गौरांग के भक्तों की।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैताचार्य की जय हो तथा भगवान् गौरांग के भक्तों की जय हो।

तृतीय श्लोकेर अर्थ करि विवरण ।
वस्तु-निर्देश-रूप मङ्गलाचरण ॥ ४॥

तृतीय श्लोकेर अर्थ करि विवरण ।
वस्तु-निर्देश-रूप मङ्गलाचरण ॥ ४॥

तृतीय—तीसरे; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **करि**—मैं करता हूँ; **विवरण**—विवरण; **वस्तु**—परम सत्य का; **निर्देश-रूप**—चित्रण-रूप में; **मङ्गल**—मंगल; **आचरण**—आचरण।

अनुवाद

सर्वप्रथम मैं (प्रथम चौदह श्लोकों में से) तीसरे श्लोक के अर्थ का वर्णन करूँगा। यह एक शुभ ध्वनि है, जो परम सत्य का वर्णन करती है।

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनु-भा
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांश-विभवः ।
षड्-ऐश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान्स स्वयमयं
न चैतन्यात्कृष्णाज्जगति पर-तत्त्वं परमिह ॥ ५॥

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनु-भा
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांश-विभवः ।
षड्-ऐश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान्स स्वयमयं
न चैतन्यात्कृष्णाज्जगति पर-तत्त्वं परमिह ॥ ५॥

यत्—वह जो; **अद्वैतम्**—अद्वय; **ब्रह्म**—निर्विशेष ब्रह्म; **उपनिषदि**—उपनिषदों में; **तत्**—वह; **अपि**—निश्चित रूप से; **अस्य**—उनका; **तनु-भा**—उनके दिव्य शरीर की आभा; **यः**—जो; **आत्मा**—परमात्मा; **अन्तः-यामी**—अन्तर्यामी भगवान्; **पुरुषः**—परम भोक्ता; **इति**—इस तरह; **सः**—वे; **अस्य**—उनके; **अंश-विभवः**—पूर्ण अंश का विस्तार; **षट्-ऐश्वर्यैः**—छः ऐश्वर्यों सहित; **पूर्णः**—पूर्ण; **यः**—जो; **इह**—यहाँ; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **सः**—वे; **स्वयम्**—स्वयं; **अयम्**—यह; **न**—नहीं; **चैतन्यात्**—भगवान् चैतन्य की अपेक्षा; **कृष्णात्**—भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; **जगति**—जगत् में; **पर**—उच्चतर; **तत्त्वम्**—सत्य; **परम्**—अन्य; **इह**—यहाँ।

अनुवाद

जिसका वर्णन उपनिषदों में निर्विशेष ब्रह्म के रूप में हुआ है, वह उनके शरीर का तेज मात्र है और परमात्मा के रूप में जाने जाने वाले भगवान् उनके स्थानीय पूर्ण अंश हैं। भगवान् चैतन्य छः ऐश्वर्यों से पूर्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वे परम सत्य हैं और अन्य कोई सत्य न उनसे बड़ा है, न उनके समान है।

तात्पर्य

उपनिषदों के संकलनकर्ता निर्विशेष ब्रह्म की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वैदिक साहित्य की अत्यन्त उन्नत अंग मानी जाने वाली उपनिषदें उन व्यक्तियों के लिए हैं, जो भौतिक संगति से मुक्त होना चाहते हैं और ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रामाणिक गुरु के पास जाते हैं। उपसर्ग *उप* सूचित करता है कि मनुष्य को परम सत्य के विषय में ज्ञान गुरु से प्राप्त करना चाहिए। जिसे अपने गुरु पर श्रद्धा होती है, वह वास्तव में दिव्य उपदेश प्राप्त करता है और ज्यों-ज्यों भौतिक जीवन के प्रति उसकी आसक्ति शिथिल पड़ती जाती है, त्यों-त्यों वह आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने में समर्थ बनाता है। उपनिषदों का दिव्य ज्ञान मनुष्य को भौतिक अस्तित्व के बन्धन से मुक्त कर सकता है और इस प्रकार मुक्त होने पर मनुष्य आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करता हुआ पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के आध्यात्मिक जगत् को प्राप्त कर सकता है।

आध्यात्मिक प्रकाश का शुभारम्भ निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति से होता है। ऐसी अनुभूति भौतिक विविधताओं के क्रमिक निषेध से प्राप्त होती है। निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति परम सत्य की आंशिक एवं दूर की अनुभूति है,

जो ज्ञान मार्ग द्वारा प्राप्त होती है। इसकी तुलना दूर से देखे गये उस पर्वत से की जा सकती है, जिसे वह धुँधले बादल-सा समझता है। पर्वत धुँधला बादल नहीं होता, किन्तु हमारी अपूर्ण दृष्टि के कारण वह दूर से ऐसा लगता है। परम सत्य की अपूर्ण या धुँधली अनुभूति में आध्यात्मिक विविधता दिखाई नहीं देती। इसीलिए यह अनुभव *अद्वैतवाद* अर्थात् परम सत्य के एकत्व की अनुभूति कहलाता है।

ब्रह्म का निर्विशेष चमकता तेज भगवान् श्रीकृष्ण के व्यक्तिगत साकार शरीर की किरणें हैं। चूँकि श्री गौर-सुन्दर अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं, अतएव ब्रह्म तेज उनके दिव्य शरीर की किरणें हैं।

इसी प्रकार परमात्मा चैतन्य महाप्रभु के पूर्ण अंश हैं। प्रत्येक हृदय में स्थित *अन्तर्यामी* समस्त जीवों के नियामक हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में हुई है, जहाँ भगवान् कृष्ण कहते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः*—"मैं हर एक के हृदय में स्थित हूँ।" *भगवद्गीता* (५.२९) में यह भी कहा गया है— *भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*—जो यह सूचित करता है कि परमात्मा स्वरूप भगवान् हर वस्तु के स्वामी हैं। इसी प्रकार *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) में कहा गया है—*अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्*—भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं—हर जीव के हृदय के भीतर तथा प्रत्येक परमाणु में भी। इस तरह इस परमात्मा स्वरूप में भगवान् सर्वव्यापी हैं।

इसके साथ ही, भगवान् चैतन्य समस्त ऐश्वर्य, बल, यश, सौन्दर्य, ज्ञान तथा वैराग्य के भी स्वामी हैं, क्योंकि वे स्वयं श्रीकृष्ण हैं। वे *पूर्ण* कहलाते हैं। श्री चैतन्य के रूप में भगवान् आदर्श त्यागी हैं, जिस तरह श्री राम आदर्श राजा थे। भगवान् चैतन्य ने संन्यास ग्रहण किया और अपने जीवन में अतीव अद्भुत सिद्धान्तों का आदर्श प्रस्तुत किया। संन्यास में कोई उनकी समता नहीं कर सकता। यद्यपि कलियुग में संन्यास ग्रहण करना सामान्यतया वर्जित है, लेकिन चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण किया, क्योंकि वे पूर्ण वैरागी थे। अन्य लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते, किन्तु वे यथासम्भव उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण ही कर सकते हैं। जो लोग जीवन के इस आश्रम (संन्यास आश्रम) के लिए अयोग्य हैं, उन्हें शास्त्रों का कठोर आदेश है कि

वे इसे ग्रहण न करें। किन्तु चैतन्य महाप्रभु वैराग्य तथा अन्य सारे ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। अतएव वे परम सत्य के सर्वोच्च सिद्धान्त हैं।

चैतन्य महाप्रभु का तात्त्विक विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से भिन्न नहीं हैं; न तो कोई उनसे बढ़कर है, न उनके तुल्य है। *भगवद्गीता* (७.७) में भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—हे धनञ्जय (अर्जुन)! मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है। इस तरह इसकी पुष्टि की गई है कि श्रीकृष्ण चैतन्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं है।

निर्विशेष ब्रह्म उन लोगों का लक्ष्य होता है, जो दिव्य ज्ञान की पुस्तकों का अनुशीलन करते हैं और परमात्मा उन लोगों का लक्ष्य है, जो योग का अभ्यास करते हैं। किन्तु जो भगवान् को जानता है, वह ब्रह्म तथा परमात्मा के साक्षात्कार से भी आगे निकल जाता है, क्योंकि भगवान् परम ज्ञान के सर्वोच्च स्तर हैं।

भगवान् *सच्चिदानन्द* (सनातन जीवन, ज्ञान तथा आनन्द) के पूर्ण स्वरूप हैं। परम पूर्ण के *सत्* अंश के साक्षात्कार से भगवान् के निर्विशेष ब्रह्म पहलू की अनुभूति होती है। परम पूर्ण के *चित्* अंश से भगवान् के अन्तर्यामी स्वरूप परमात्मा की अनुभूति होती है। किन्तु ये दोनों अनुभूतियाँ आंशिक हैं। पूर्ण के इन दोनों में से किसी एक का साक्षात्कार *आनन्द* की अनुभूति में सहायक नहीं बनता। आनन्द की ऐसी अनुभूति के बिना परम सत्य का ज्ञान अपूर्ण होता है।

कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा लिखित चैतन्य-चरितामृत के इस श्लोक की पुष्टि श्रील जीव गोस्वामी कृत *तत्त्व-सन्दर्भ* के एक समानान्तर कथन से होती है। *तत्त्व-सन्दर्भ* के नवें खण्ड में कहा गया है कि कभी-कभी परम सत्य को निर्विशेष ब्रह्म के रूप में माना जाता है, जो आध्यात्मिक होते हुए भी परम सत्य का आंशिक प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। वैकुण्ठ के अधिष्ठाता देव नारायण को श्रीकृष्ण के ही विस्तार समझना चाहिए, किन्तु श्रीकृष्ण परम सत्य हैं, जो सारे जीवों के दिव्य प्रेम के विषय हैं।

ব্রহ্ম, আত্মা, ভগবান্—অনুবাদ তিন ।
অঙ্গ-প্রভা, অংশ, স্বরূপ—তিন বিধেয়-চিহ্ন ॥৬॥

ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—अनुवाद तिन ।
अङ्ग-प्रभा, अंश, स्वरूप—तिन विधेय-चिह्न ॥ ६ ॥

ब्रह्म—निर्विशेष ब्रह्म; **आत्मा**—स्थानीय परमात्मा; **भगवान्**—भगवान्; **अनुवाद**—विषय; **तिन**—तीन; **अङ्ग-प्रभा**—शरीर की आभा; **अंश**—आंशिक प्राकट्य; **स्वरूप**—स्वरूप; **तिन**—तीन; **विधेय-चिह्न**—चिह्न।

अनुवाद

निर्विशेष ब्रह्म, स्थानीय परमात्मा तथा भगवान्—ये तीन उद्देश्य हैं और चमकदार ज्योति, आंशिक प्राकट्य तथा मूल स्वरूप ये इन तीनों को निर्दिष्ट करने वाले क्रमिक लक्षण हैं।

अनुवाद आगे, पाछे विधेय स्थापन ।
सेइ अर्थ कहि, शुन शास्त्र-विवरण ॥ ७ ॥
अनुवाद आगे, पाछे विधेय स्थापन ।
सेइ अर्थ कहि, शुन शास्त्र-विवरण ॥ ७ ॥

अनुवाद—विषय; **आगे**—पहले; **पाछे**—पीछे; **विधेय**—विधेय, निर्दिष्ट बात; **स्थापन**—स्थापना; **सेइ**—यह; **अर्थ**—अर्थ; **कहि**—मैं कहता हूँ; **शुन**—कृपया सुनो; **शास्त्र-विवरण**—शास्त्रों के विवरण को।

अनुवाद

विधेय सदैव उद्देश्य के बाद आता है। अब मैं इस श्लोक का अर्थ शास्त्रों के अनुसार बतलाऊँगा।

स्वयं भगवान्कृष्ण, विष्णु-परतत्त्व ।
पूर्ण-ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥ ८ ॥
स्वयं भगवान्कृष्ण, विष्णु-परतत्त्व ।
पूर्ण-ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥ ८ ॥

स्वयम्—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **विष्णु**—सर्वव्यापी विष्णु; **पर-तत्त्व**—परम सत्य; **पूर्ण-ज्ञान**—पूर्ण ज्ञान; **पूर्ण-आनन्द**—पूर्ण आनन्द; **परम**—परम; **महत्त्व**—महत्त्व।

अनुवाद

भगवान् के आदि स्वरूप कृष्ण सर्वव्यापी विष्णुतत्त्व हैं। वे पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण आनन्द हैं। वे परम दिव्य हैं।

'नन्द-सूत' बलि' याँरे भागवते गाइ ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य-गोसाञि ॥९॥

'नन्द-सुत' बलि' याँरे भागवते गाइ ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य-गोसाञि ॥ ९ ॥

नन्द-सुत—नन्द महाराज के पुत्र; **बलि'**—जैसे; **याँरे**—जो; **भागवते**—*श्रीमद्भागवत* में; **गाइ**—गाया जाता है; **सेइ**—वही; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **अवतीर्ण**—अवतरित हुए हैं; **चैतन्य-गोसाञि**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जिन्हें *श्रीमद्भागवत* नन्द महाराज के पुत्र के रूप में बतलाता है, वही भगवान् चैतन्य के रूप में इस पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं।

तात्पर्य

साहित्य में अच्छी रचना के आलंकारिक सिद्धान्तों के अनुसार विधेय अर्थात् निर्दिष्ट बात के पूर्व उद्देश्य (कर्ता) आना चाहिए। वैदिक साहित्य में प्राय: ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् का उल्लेख होता है, अतएव ये तीनों पद दिव्य ज्ञान समझने के विषय कहलाते हैं। किन्तु यह बहुविदित नहीं है कि जिसे निर्विशेष ब्रह्म के रूप में पहचाना जाता है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य शरीर का तेज है। न ही व्यापक रूप से यह भी ज्ञात है कि परमात्मा, चैतन्य महाप्रभु के केवल अंश विस्तार हैं, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। अतएव भगवान् चैतन्य के तेज के रूप में ब्रह्म, उनके अंश विस्तार के रूप में परमात्मा और चैतन्य महाप्रभु से अभिन्न भगवान् श्रीकृष्ण के जो वर्णन हैं, उनकी पुष्टि प्रामाणिक वैदिक साहित्य के साक्ष्य पर होनी चाहिए।

लेखक सर्वप्रथम इसकी पुष्टि करना चाहते हैं कि वेदों का सार *विष्णुतत्त्व* अर्थात् परम सत्य, सर्वव्यापक ईश्वर, विष्णु हैं। *विष्णुतत्त्व* की विभिन्न कोटियाँ हैं, जिनमें सर्वोच्च परम विष्णुतत्त्व भगवान् कृष्ण हैं, जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता*

में तथा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में की गई है। *श्रीमद्भागवत* में वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को नन्दसुत अर्थात् राजा नन्द के पुत्र कहा गया है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि नन्दसुत ही फिर से श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं और वे अपने इस कथन का आधार वैदिक साहित्य का वह निर्णय बताते हैं, जिसमें कहा गया है कि भगवान् कृष्ण तथा चैतन्य महाप्रभु में कोई अन्तर नहीं है। लेखक इसको सिद्ध करेंगे। यदि यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण समस्त *तत्त्वों* (सत्यों) के अर्थात् ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् के उद्गम हैं और श्रीकृष्ण तथा भगवान् चैतन्य महाप्रभु में कोई अन्तर नहीं है, तो फिर यह समझने में कोई भी कठिनाई नहीं होगी कि श्री चैतन्य महाप्रभु ही उन समस्त तत्त्वों के भी उद्गम हैं। वही परम सत्य, जो विभिन्न अनुभूति वाले जिज्ञासुओं के समक्ष प्रकट होता है, ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।

प्रकाश-विशेषे तेँह धरे तिन नाम ।
ब्रह्म, परमात्मा आर स्वयं-भगवान् ॥ १० ॥

प्रकाश-विशेषे तेंह धरे तिन नाम ।
ब्रह्म, परमात्मा आर स्वयं-भगवान् ॥ १० ॥

प्रकाश—प्राकट्य का; **विशेषे**—विविध रूप में; **तेंह**—वे; **धरे**—धरते हैं; **तिन**—तीन; **नाम**—नाम; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **परमात्मा**—परमात्मा; **आर**—तथा; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

अपने विभिन्न प्राकट्यों की दृष्टि से वे तीन पहलूओं में विख्यात हैं, जो निर्विशेष ब्रह्म, स्थानीय परमात्मा तथा आदि भगवान् कहलाते हैं।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने अपने *भागवत-सन्दर्भ* नामक ग्रंथ में *भगवान्* शब्द की व्याख्या की है। समस्त चिन्त्य तथा अचिन्त्य शक्तियों से ओतप्रोत ईश्वर ही परम पूर्ण हैं। निर्विशेष ब्रह्म परम सत्य का आंशिक प्राकट्य होता है, जिसकी अनुभूति इन पूर्ण शक्तियों की अनुपस्थिति में होती है। *भगवान्* शब्द

का पहला अक्षर *भ* है, जिसका अर्थ है, "पालक" तथा "रक्षक"। अगले शब्द *ग* का अर्थ है, "अग्रणी," "आगे बढ़ाने वाला" तथा "सृजनकर्ता (स्रष्टा)"। *व* का अर्थ है, "निवास करना" (सारे जीव भगवान् में निवास करते हैं और भगवान् हर जीव के हृदय में निवास करते हैं)। इन सारे सिद्धान्तों को मिलाने से *भगवान्* शब्द ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, प्रभाव आदि की अचिन्त्य शक्ति को बतलाता है, जो समस्त प्रकार की निम्नताओं (क्षुद्रताओं) से रहित है। ऐसी अचिन्त्य शक्तियों के बिना न तो पूर्णतः पालन करना सम्भव है, न रक्षा करना। हमारी आधुनिक सभ्यता अनेक महान् वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों द्वारा की गई वैज्ञानिक व्यवस्थाओं से नियंत्रित है। अतएव हम उस विराट् मस्तिष्क के विषय में केवल कल्पना कर सकते हैं, जिसकी व्यवस्था से अनेक ग्रहों तथा उपग्रहों का गुरुत्व स्थिर है और जिससे उस अनन्त आकाश की उत्पत्ति होती है, जिसमें ग्रह-उपग्रह तैर रहे हैं। यदि हम समझते हैं कि मनुष्य-निर्मित उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है, तो यह सोचना मूर्खता होगी कि विभिन्न ग्रह-मण्डलों की व्यवस्था के पीछे विराट् बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। यह विश्वास करना कि किसी श्रेष्ठ बुद्धि की श्रेष्ठ व्यवस्था के बिना ही सभी विराट् ग्रह तैर रहे हैं, तर्कसंगत नहीं है। इस विषय की व्याख्या *भगवद्गीता* (१५.१३) में स्पष्ट रूप से की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं, "मैं प्रत्येक ग्रह में प्रवेश करता हूँ और वे मेरी ही शक्ति से वे कक्षा में स्थिर रहते हैं।" यदि ये ग्रह भगवान् के नियंत्रण में न होते, तो वे उसी तरह बिखर जाते, जिस तरह वायु में धूल के कण बिखर जाते हैं। आधुनिक विज्ञानी भगवान् की इस अचिन्त्य शक्ति की केवल अव्यावहारिक व्याख्या ही कर सकते हैं।

भ, ग तथा व—इन अक्षरों की शक्तियाँ विभिन्न अर्थ बतलाने वाली हैं। भगवान् अपने विभिन्न शक्तिशाली प्रतिनिधियों के द्वारा हर वस्तु का पालन तथा संरक्षण करते हैं, किन्तु अपने भक्तों की रक्षा तथा पालन वे स्वयं करते हैं; जिस प्रकार एक राजा अपने निजी सन्तानों की रक्षा एवं पालन स्वयं करता है, जबकि राज्य के संरक्षण एवं पालन का कार्य विभिन्न प्रशासनिक प्रतिनिधियों पर छोड़ देता है। जैसाकि *भगवद्गीता* से पता चलता है, भगवान् अपने भक्तों

के अग्रणी (नेता) हैं और भगवान् अपने प्रिय भक्तों को स्वयं आदेश देते हैं कि भक्ति के मार्ग पर किस तरह निश्चित रूप से प्रगति करनी चाहिए और इस तरह भगवद्धाम पहुँचना चाहिए। भगवान् अपने भक्तों द्वारा अर्पित समस्त पूजन को ग्रहण करते हैं और उनके लिए वे ही लक्ष्य हैं। भगवान् अपने भक्तों में दिव्य भगवत्प्रेम की भावना उत्पन्न करने के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करते हैं। ऐसा करने के लिए वे कभी-कभी अपने भक्त की भौतिक आसक्ति को बलपूर्वक छीन लेते हैं और उसकी सारी भौतिक सुरक्षा के साधनों को अस्तव्यस्त कर देते हैं, जिससे भक्त पूरी तरह से भगवान् के संरक्षण पर निर्भर रहे। इस प्रकार वे अपने आपको भक्तों के मार्गदर्शक के रूप में सिद्ध करते हैं।

भौतिक जगत् के सृजन, पालन तथा संहार से भगवान् का सीधा सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि वे अपनी अन्तरंगा शक्ति से उत्पन्न साधनों के साथ दिव्य आनन्द को भोगने में नित्य व्यस्त रहते हैं। तो भी भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति (जीवों) के संचालक होने के कारण वे अपना विस्तार *पुरुष-अवतारों* के रूप में करते हैं, जिन्हें उन्हीं के समान शक्ति प्रदत्त रहती है। ये *पुरुष-अवतार* भी *भगवत्तत्त्व* की कोटि में आते हैं, क्योंकि इनमें से हर एक भगवान् के आदि रूप के समकक्ष है। सारे जीव उनके सूक्ष्म अंश हैं और गुणात्मक रूप से उन्हीं के समान हैं। वे इस भौतिक जगत् में भौतिक भोग के लिए भेजे जाते हैं, जिससे वे स्वतन्त्र व्यक्ति होने की अपनी इच्छा पूर्ण कर लें; किन्तु इतने पर भी वे भगवान् की परम इच्छा के अधीन रहते हैं। भगवान् परमात्मा के रूप में ऐसे भौतिक भोग की व्यवस्था का निरीक्षण करते हैं। इस प्रसंग में एक अस्थायी मेले का दृष्टान्त उपयुक्त होगा। यदि किसी राज्य के नागरिक कुछ समय के लिए आनन्द उठाने की इच्छा से एक मेले में एकत्र होते हैं, तो सरकार इसके निरीक्षण के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त कर देती है। ऐसे अधिकारी को सारे सरकारी अधिकार प्राप्त रहते हैं, अतएव वह सरकार से अभिन्न होता है। मेला समाप्त हो जाने पर ऐसे अधिकारी की आवश्यकता नहीं रहती और वह अपने घर लौट जाता है। परमात्मा की तुलना ऐसे अधिकारी से की जाती है।

जीव सर्वेसर्वा नहीं होते। वे निस्सन्देह भगवान् के अंश होते हैं और गुणात्मक रूप से उनसे एकरूप होते हैं; फिर भी वे उनके नियन्त्रण में रहते हैं। इस तरह वे कभी भी भगवान् के तुल्य या उनसे एकाकार नहीं होते। जीव के संग रहने वाले भगवान् परमात्मा होते हैं। अतएव क्षुद्र जीव एवं परम हस्ती (परमात्मा) को समान स्तर पर नहीं मानना चाहिए।

भौतिक जगत् के सृजन, पालन तथा संहार के समय जो सर्वव्यापी सत्य सदैव विद्यमान रहता है और समाधि में सारे जीव जिसमें निवास करते हैं, वह निर्विशेष ब्रह्म कहलाता है।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥११॥

वदन्ति—वे कहते हैं; **तत्**—वह; **तत्त्व-विदः**—विद्वान आत्मा, ज्ञानी पुरुष; **तत्त्वम्**—परम सत्य; **यत्**—जो; **ज्ञानम्**—ज्ञान; **अद्वयम्**—अद्वय; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **इति**—इस प्रकार; **परमात्मा**—परमात्मा; **इति**—इस प्रकार; **भगवान्**—भगवान्; **इति**—इस प्रकार; **शब्द्यते**—कहलाता है।

अनुवाद

"परम सत्य को जानने वाले विद्वान-अध्यात्मवादी कहते हैं कि यह अद्वय ज्ञान तत्त्व है, जो निर्विशेष ब्रह्म, स्थानीय परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।"

तात्पर्य

यह संस्कृत श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) में आया है, जिसमें सूत गोस्वामी समस्त शास्त्रों के सार विषयक उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं, जिन्हें शौनक आदि ऋषियों ने उनसे पूछा था। *तत्त्वविदः* ऐसे व्यक्तियों के लिए आया है, जो परम सत्य के ज्ञान से युक्त हैं। वे आध्यात्मिक स्तर पर होने के कारण द्वैतरहित होकर ज्ञान को निश्चय ही समझ सकते हैं। परम सत्य कभी ब्रह्म, कभी परमात्मा और कभी भगवान् के रूप में जाना जाता है। जिन्हें सत्य का ज्ञान है,

वे जानते हैं कि जो मनुष्य शुष्क तर्कवितर्क द्वारा परम सत्य तक पहुँचना चाहता है, अन्ततोगत्वा उसे निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति होगी। जो व्यक्ति योगाभ्यास द्वारा परम सत्य तक पहुँचना चाहता है, उसे परमात्मा का साक्षात्कार होगा, किन्तु जिसे पूर्ण ज्ञान एवं आध्यात्मिक बोध है, वह भगवान् के आध्यात्मिक साकार स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

भगवान् के भक्त जानते हैं कि व्रजराज के पुत्र श्रीकृष्ण परम सत्य हैं। वे कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं में भेदभाव नहीं करते। जो भगवान् के दिव्य नाम, रूप तथा गुणों को भगवान् से अलग करना चाहता है, वह परम ज्ञान से विहीन है। शुद्ध भक्त जानता है कि जब वह "कृष्ण" के दिव्य नाम का उच्चारण करता है, तब श्रीकृष्ण दिव्य ध्वनि के रूप में वहाँ उपस्थित होते हैं। इसलिए वह परम आदर एवं श्रद्धा के साथ उच्चारण करता है। जब वह श्रीकृष्ण के रूपों का दर्शन करता है, तब वह भगवान् से भिन्न अन्य कुछ नहीं देखता। यदि कोई इसके विपरीत देखता है, तो समझना चाहिए कि वह परम के ज्ञान में प्रशिक्षित नहीं है। परम के ज्ञान का यह अभाव *माया* कहलाता है। जो कृष्णभावनाभावित नहीं होता, वह द्वैत ज्ञान के अन्तर्गत *माया* के वशीभूत होता है। परम सत्य में भगवान् के सारे प्राकट्य अद्वैत होते हैं, जिस प्रकार मायापति विष्णु के विविध रूप अद्वैत हैं। निर्विशेष ब्रह्म को मानने वाले अनुभववादी दार्शनिक केवल इस ज्ञान को स्वीकार करते हैं कि जीव भगवान् से भिन्न नहीं है और परमात्मा की खोज करने वाले योगी इतना ही स्वीकार करते हैं कि शुद्ध जीव परमात्मा से भिन्न नहीं है। किन्तु शुद्ध भक्त की परम धारणा में अन्य सभी सम्मिलित रहते हैं। भक्त कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता है, अतएव उसकी अनुभूति सर्वाधिक पूर्ण है।

তাঁহার অঙ্গের শুদ্ধ কিরণ-মণ্ডল ।
উপনিষত্কহে তাঁরে ব্রহ্ম সুনির্মল ॥১২॥

তাঁহার অঙ্গের শুদ্ধ কিরণ-মণ্ডল ।
উপনিষৎকহে তাঁরে ব্রহ্ম সুনির্মল ॥ ১২॥

ताँहार—उनका; **अङ्गेर**—शरीर का; **शुद्ध**—शुद्ध; **किरण**—किरणों का; **मण्डल**—क्षेत्र; **उपनिषत्**—उपनिषद्; **कहे**—कहते हैं; **ताँरे**—उनको; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **सु-निर्मल**—दिव्य।

अनुवाद

जिसे उपनिषदें दिव्य निर्विशेष ब्रह्म कहती हैं, वह उन्हीं परम पुरुष के प्रकाशमान तेज का मण्डल है।

तात्पर्य

मुण्डक उपनिषद् के तीन मन्त्रों (२.२.९-११) से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शारीरिक तेज के विषय में इस प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है :

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद यद् आत्मविदो विदुः।
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र-तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वं इदं विभाति।
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण
अधश्चोर्ध्वं च परसृतं ब्रह्मै-वेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्

"भौतिक आवरण के परे आध्यात्मिक जगत् में असीम ब्रह्म-तेज है, जो भौतिक कल्मष से रहित है। वह तेजवान श्वेत प्रकाश अध्यात्मवादियों द्वारा समस्त प्रकाशों का प्रकाश माना जाता है। उस क्षेत्र में प्रकाश के लिए सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा का प्रकाश, अग्नि, बिजली—कुछ भी नहीं चाहिए। वस्तुतः भौतिक जगत् में जो भी प्रकाश प्रकट होता है, वह उस परम प्रकाश का परावर्तन मात्र है। वही ब्रह्म आगे है, पीछे है, उत्तर में है, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में है और वही ऊपर तथा नीचे भी है। दूसरे शब्दों में, वह परम ब्रह्म तेज भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही आकाशों में परिव्याप्त होता है।"

চর্ম-চক্ষে দেখে যৈছে সূর্য নির্বিশেষ ।
জ্ঞান-মার্গে লৈতে নারে কৃষ্ণের বিশেষ ॥ ১৩ ॥

चर्म-चक्षे देखे ग्रैछे सूर्य निर्विशेष ।
ज्ञान-मार्गे लैते नारे कृष्णेर विशेष ॥ १३ ॥

चर्म-चक्षे—खुले नेत्रों से; **देखे**—कोई देखता है; **ग्रैछे**—जैसे; **सूर्य**—सूर्य; **निर्विशेष**—

विविधता के बिना; **ज्ञान-मार्गे**—ज्ञान-मार्ग से; **लैते**—स्वीकार करना; **नारे**—असम्भव; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **विशेष**—विविधता।

अनुवाद

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने नग्न नेत्रों से सूर्य को केवल एक चमकीली वस्तु के अतिरिक्त और किसी रूप में नहीं जान सकता, उसी तरह केवल दार्शनिक चिन्तन से वह कृष्ण की दिव्य विविधताओं को नहीं समझ सकता।

যস্য প্রভা প্রভবতো জগদণ্ড-কোটি-
কোটীষ্বশেষ-বসুধাদি-বিভূতি-ভিন্নম্ ।
তদ্ব্রহ্ম নিষ্কলমনন্তমশেষ-ভূতং
গোবিন্দমাদি-পুরুষং তমহং ভজামি ॥১৪॥

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड-कोटि-
कोटीष्वशेष-वसुधादि-विभूति-भिन्नम् ।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेष-भूतं
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ १४॥

यस्य—जिसकी; **प्रभा**—ज्योति; **प्रभवतः**—प्रभावशील; **जगत्-अण्ड**—ब्रह्माण्ड का; **कोटि-कोटीषु**—करोड़ो में; **अशेष**—असीम; **वसुधा-आदि**—ग्रहों सहित; **विभूति**—ऐश्वर्यों सहित; **भिन्नम्**—भिन्न भिन्न होना; **तत्**—वह; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **निष्कलम्**—पूर्ण; **अनन्तम्**—अनन्त; **अशेष-भूतम्**—पूर्ण होकर; **गोविन्दम्**—भगवान् गोविन्द; **आदि-पुरुषम्**—आदि-पुरुष; **तम्**—उनकी; **अहम्**—मैं; **भजामि**—वन्दना करता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविंद की पूजा करता हूँ, जो महान् शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके दिव्य स्वरूप का दीप्तिमान तेज निर्विशेष ब्रह्म है, जो परम, पूर्ण तथा असीम है और जो करोड़ों ब्रह्माण्डों में असंख्य प्रकार के ग्रहों को उनके विभिन्न ऐश्वर्यों के साथ प्रदर्शित करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *ब्रह्म-संहिता* (५.४०) में आया है। असंख्य ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक ब्रह्माण्ड विभिन्न संरचना तथा वायुमंडल वाले ग्रहों से पूर्ण है। ये सारे

के सारे उस असीम अद्वैत ब्रह्म या पूर्ण से उद्भूत होते हैं, जो परम ज्ञान में विद्यमान है। उस असीम ब्रह्म तेज का उद्गम भगवान् गोविन्द का दिव्य शरीर है, जिनको आदि भगवान् के रूप में सादर नमस्कार किया जाता है।

कोटी कोटी ब्रह्माण्डे ये ब्रह्मेर विभूति ।
सेइ ब्रह्म गोविन्देर हय अङ्ग-कान्ति ॥ १५ ॥

कोटी कोटी ब्रह्माण्डे ये ब्रह्मेर विभूति ।
सेइ ब्रह्म गोविन्देर हय अङ्ग-कान्ति ॥ १५ ॥

कोटी—करोड़ों; **कोटी**—करोड़ों; **ब्रह्म-अण्डे**—ब्रह्माण्डों में; **ये**—जो; **ब्रह्मेर**—ब्रह्म का; **विभूति**—ऐश्वर्य; **सेइ**—वह; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **गोविन्देर**—भगवान् गोविन्द का; **हय**—है; **अङ्ग-कान्ति**—शारीरिक तेज।

अनुवाद

(ब्रह्माजी ने कहा :) "निर्विशेष ब्रह्म के ऐश्वर्य करोड़ों ब्रह्माण्डों में परिव्याप्त होते हैं। यह ब्रह्म भगवान् गोविन्द का शारीरिक तेज मात्र होता है।"

सेइ गोविन्द भजि आमि, तेहेँ मोर पति ।
ताँहार प्रसादे मोर हय सृष्टि-शक्ति ॥ १६ ॥

सेइ गोविन्द भजि आमि, तेहों मोर पति ।
ताँहार प्रसादे मोर हय सृष्टि-शक्ति ॥ १६ ॥

सेइ—वही; **गोविन्द**—भगवान् गोविन्द; **भजि**—पूजा करता हूँ; **आमि**—मैं; **तेहों**—वे; **मोर**—मेरे; **पति**—स्वामी; **ताँहार**—उनकी; **प्रसादे**—कृपा से; **मोर**—मेरा; **हय**—होता है; **सृष्टि**—सृष्टि की; **शक्ति**—शक्ति।

अनुवाद

"मैं भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ। वे ही मेरे स्वामी हैं। केवल उन्हीं की कृपा से मुझमें ब्रह्माण्ड का सृजन करने की शक्ति है।"

तात्पर्य

यद्यपि सूर्य अन्य ग्रहों से बहुत दूर स्थित है, किन्तु उसकी किरणें उन सबका भरण-पोषण करती हैं। निस्सन्देह, सूर्य समूचे ब्रह्माण्ड के ऊपर अपनी

ऊष्मा तथा प्रकाश वितरण करता है। इसी प्रकार परम सूर्यरूपी गोविन्द अपनी विभिन्न शक्तियों के रूप में अपनी ऊष्मा तथा प्रकाश का विस्तार करते हैं। सूर्य की ऊष्मा तथा उसका प्रकाश सूर्य से अभिन्न होते हैं। इसी प्रकार, गोविन्द की असीम शक्तियाँ स्वयं गोविंद से अभिन्न हैं। अतएव सर्वव्यापी ब्रह्म सर्वव्यापी गोविन्द हैं। *भगवद्गीता* (१४.२७) में स्पष्ट उल्लेख है कि निर्विशेष ब्रह्म गोविन्द पर आश्रित है। परम ज्ञान की यही वास्तविक धारणा है।

मुनयो वात-वासनाः श्रमणा ऊर्ध्व-मन्थिनः ।
ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्न्यासिनोऽमलाः ॥ १७॥

मुनयो वात-वासनाः श्रमणा ऊर्ध्व-मन्थिनः ।
ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्न्यासिनोऽमलाः ॥ १७॥

मुनयः—सन्तगण; **वात-वासनाः**—नग्न; **श्रमनाः**—जो कठोर तपस्या करते हैं; **ऊर्ध्व**—ऊँचे; **मन्थिनः**—जिनका वीर्य; **ब्रह्म-आख्यम्**—ब्रह्मलोक के नाम से प्रसिद्ध; **धाम**—धाम को; **ते**—वे; **यान्ति**—जाते हैं; **शान्ताः**—शान्त मन वाले, ब्रह्म में स्थिर; **सन्न्यासिनः**—संन्यासीगण; **अमलाः**—शुद्ध।

अनुवाद

"वे नग्न साधु तथा संन्यासी, जो कठोर शारीरिक तपस्या करते हैं, जो अपने वीर्य को मस्तिष्क तक ऊपर उठा सकते हैं (ऊर्ध्व-रेता हैं) तथा जो ब्रह्म में पूर्णतया स्थित हैं, वे ब्रह्मलोक नामक मण्डल में निवास कर सकते हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (११.६.४७) के इस श्लोक में, *वातवासनाः* उन साधुओं के लिए आया है, जो किसी भी भौतिक वस्तु, यहाँ तक कि वस्त्र की भी परवाह नहीं करते, अपितु प्रकृति पर ही पूर्ण रूप से आश्रित रहते हैं। ऐसे साधु कठोर शीत या झुलसती गर्मी में भी अपने शरीरों को नहीं ढकते। वे शरीर के कष्टों से दूर न रहने के लिए महान् प्रयत्न करते हैं और वे द्वार-द्वार जाकर भीख माँगकर जीवित रहते हैं। वे जाने या अनजाने में भी वीर्य स्खलित नहीं करते। वे ऐसे ब्रह्मचर्य से वीर्य को मस्तिष्क तक ले जाते हैं। इस तरह वे अत्यधिक

बुद्धिमान बन जाते हैं और उनकी स्मृति प्रखर हो उठती है। उनका मन कभी भी परम सत्य के चिन्तन से विचलित नहीं होता, न ही वे भौतिक भोग की भावना से कभी कलुषित होते हैं। ऐसे साधु-संन्यासी कठोर अनुशासन में की गई तपस्या के अभ्यास से ऐसी शान्त दशा को प्राप्त होते हैं, जो प्रकृति के गुणों से परे है और वे निर्विशेष ब्रह्म में समा जाते हैं।

आत्मान्तर्यामी याँरे योग-शास्त्रे कय ।
सेह गोविन्देर अंश विभूति ये हय ॥१८॥

आत्मान्तर्यामी य्याँरे य्योग-शास्त्रे कय ।
सेह गोविन्देर अंश विभूति य्ये हय ॥१८॥

आत्मा अन्तः-य्यामी—अन्तस्थित परमात्मा; **य्याँरे**—जो; **य्योग-शास्त्रे**—योग-शास्त्रों में; **कय**—कहा जाता है; **सेह**—कि; **गोविन्देर**—गोविन्द का; **अंश**—पूर्णांश; **विभूति**—विस्तार; **य्ये**—जो; **हय**—है।

अनुवाद

जिन्हें योगशास्त्रों में अन्तर्यामी परमात्मा कहकर वर्णित किया जाता है, वे भी गोविन्द के निजी विस्तार के अंश हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वभाव से प्रसन्नचित्त हैं। उनके आमोद-प्रमोद या उनकी लीलाएँ पूर्णतया दिव्य हैं। वे अस्तित्व के चतुर्थ आयाम में रहते हैं, क्योंकि यद्यपि भौतिक जगत् लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई से प्रतिबन्धित रहता है, किन्तु भगवान् अपने शरीर, रूप तथा अस्तित्व में पूर्णतया असीम होते हैं। वे भौतिक जगत् के भीतर के किसी भी व्यापार से स्वयं जुड़े हुए नहीं होते हैं। भौतिक जगत् उनके *पुरुष-अवतारों* के विस्तारों से सृजित होता है, जो समग्र भौतिक शक्ति तथा सारे बद्धजीवों का मार्गदर्शन करते हैं। *पुरुष* के तीन विस्तारों को समझकर जीव भौतिक जगत् के केवल २४ तत्त्वों के ज्ञान की अवस्था को पार कर सकता है।

महाविष्णु के विस्तारों में से एक क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रत्येक जीव के भीतर परमात्मा हैं। समस्त जीवों के परमात्मा अथवा द्वितीय *पुरुष* के रूप

में वे गर्भोदकशायी विष्णु कहलाते हैं। असंख्य ब्रह्माण्डों के स्रष्टा या आदि कारण अथवा प्रथम *पुरुष* जो कारण सागर में शयन करते हैं, वे महाविष्णु कहलाते हैं। ये तीनों पुरुष भौतिक जगत् के व्यापारों का निर्देशन करते हैं।

प्रामाणिक शास्त्र निर्देश देते हैं कि हर व्यक्तिगत जीव परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को पुनः जागृत करे। निस्सन्देह, योग ऐसी विधि है, जिससे परमात्मा के रूप में जाने जाने वाले *पुरुष* से सम्बन्ध स्थापित करके भौतिक तत्त्वों के प्रभाव का अतिक्रमण किया जा सकता है। जिस किसी ने सृजन की प्रक्रिया की जटिलताओं का भलीभाँति अध्ययन किया है, वह बड़ी सरलता से जान सकता है कि ये परमात्मा परम पुरुष श्रीकृष्ण के अंश हैं।

অনন্ত স্ফটিকে যৈছে এক সূর্য ভাসে ।
তৈছে জীবে গোবিন্দের অংশ প্রকাশে ॥১৯॥

अनन्त स्फटिके यैछे एक सूर्य्य भासे ।
तैछे जीवे गोविन्देर अंश प्रकाशे ॥ १९ ॥

अनन्त—अनन्त; **स्फटिके**—रत्नों में; **यैछे**—जैसे; **एक**—एक; **सूर्य्य**—सूर्य; **भासे**—प्रकट होता है; **तैछे**—जैसे; **जीवे**—जीव में; **गोविन्देर**—गोविन्द का; **अंश**—अंश; **प्रकाशे**—प्रकट होता है।

अनुवाद

जिस प्रकार एक ही सूर्य असंख्य रत्नों में प्रतिबिम्बित होता दिखता है, उसी प्रकार गोविन्द (परमात्मा रूप में) समस्त जीवों के हृदयों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

सूर्य एक विशिष्ट स्थान पर स्थित होता है, किन्तु असंख्य रत्नों में प्रतिबिम्बित होता है और असंख्य स्थानीय रूपों में प्रकट होता है। इसी प्रकार यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने दिव्य धाम गोलोक वृन्दावन में नित्य विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे हर प्राणी के हृदय में परमात्मा रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि जीव तथा परमात्मा एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों की तरह हैं। परमात्मा जीव को उसके विगत कर्मों के

फलस्वरूप सकाम कर्मों में प्रवृत्त करते हैं, किन्तु स्वयं परमात्मा को ऐसे कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं रहता। ज्योंही जीव सकाम कर्म करना बन्द कर देता है और भगवान् (परमात्मा) की श्रेष्ठता को समझकर उनकी सेवा करने लगता है, त्योंही वह सारी उपाधियों से मुक्त हो जाता है और उस शुद्ध स्थिति में भगवद्धाम अर्थात् वैकुण्ठ में प्रवेश करता है।

परमात्मा सारे जीवों के पथप्रदर्शक होकर भी, जीवों की इच्छाओं को पूरा करने में हाथ नहीं बँटाते, किन्तु वे भौतिक प्रकृति के द्वारा उनकी पूर्ति के लिए व्यवस्था करते हैं। ज्योंही जीव परमात्मा के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध के प्रति जागरूक हो उठता है और उन्हीं का सहारा लेने लगता है, त्योंही वह भौतिक भोग के बन्धन से मुक्त हो जाता है। ईसाई दार्शनिक कर्म के विधान में विश्वास नहीं करते, अतएव वे तर्क देते हैं कि यह कहना बेहूदा होगा कि मनुष्य को अपने उन पूर्व कर्मों के फल भोगने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जिनसे वह अनजान है। एक अपराधी को पहले न्यायालय में गवाहों द्वारा उसके दुष्कर्मों से अवगत कराया जाता है और तब दण्ड दिया जाता है। यदि मृत्यु पूर्ण विस्मृति है, तो फिर मनुष्य को पुराने दुष्कर्मों के लिए दण्डित क्यों किया जाना चाहिए? परमात्मा की धारणा इन गलत तर्कों का एकमात्र अकाट्य उत्तर है। परमात्मा हर जीव के विगत कर्मों के साक्षी हैं। मनुष्य भले ही अपने बचपन के कार्यों को स्मरण न रखे, किन्तु उसका पिता, जिसने उसे अनेक अवस्थाओं से गुजरते देखा है, निश्चित रूप से स्मरण रखता है। इसी प्रकार अनेक जन्मों में जीव के शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं, किन्तु परमात्मा सदैव उसके साथ रहते हैं, अतएव वे उसके विभिन्न शरीरों में से गुजरने से होने वाले विकास के बाद भी, उसके सारे कार्यों को याद रखते हैं।

अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ २० ॥

अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ २० ॥

अथ वा—अथवा; **बहुना**—और अधिक; **एतेन**—इससे; **किम्**—क्या लाभ; **ज्ञातेन**—

जानने से; **तव**—तुम्हारे द्वारा; **अर्जुन**—हे अर्जुन; **विष्टभ्य**—व्याप्त होने से; **अहम्**—मैं; **इदम्**—यह; **कृत्स्नम्**—सम्पूर्ण; **एक-अंशेन**—एक अंश से; **स्थितः**—स्थित; **जगत्**—ब्रह्माण्ड।

अनुवाद

[भगवान् कृष्ण ने कहा :] "अब मैं तुमसे और अधिक क्या कहूँ? मैं केवल अपने एक अंश के द्वारा इस विराट् जगत् में व्याप्त रहता हूँ।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से अपनी शक्तियों का वर्णन करते हुए *भगवद्गीता* (१०.४२) का यह श्लोक कहा है।

तमिममहमजं शरीर-भाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्म-कल्पितानाम् ।
प्रति-दृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूत-भेद-मोहः ॥२१॥

तमिममहमजं शरीर-भाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्म-कल्पितानाम् ।
प्रति-दृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूत-भेद-मोहः ॥२१॥

तम्—उन्हें; **इमम्**—यह; **अहम्**—मैं; **अजम्**—अजन्मा; **शरीर-भाजाम्**—देहधारी बद्धात्माओं का; **हृदि हृदि**—प्रत्येक हृदय में; **धिष्ठितम्**—स्थित; **आत्म**—अपने आप; **कल्पितानाम्**—जो कल्पित हैं; **प्रति-दृशम्**—प्रत्येक दृष्टि के लिए; **इव**—की भाँति; **न एक-धा**—एक प्रकार से नहीं; **अर्कम्**—सूर्य; **एकम्**—एक; **समधिगतः**—जिसने प्राप्त कर लिया है; **अस्मि**—मैं हूँ; **विधूत**—दूर हुआ; **भेद-मोहः**—जिसकी द्वैत की मिथ्या धारणा।

अनुवाद

[भीष्म पितामह ने कहा :] "जिस प्रकार एक ही सूर्य विभिन्न दर्शकों को भिन्न भिन्न रूप से अवस्थित प्रतीत होता है, उसी तरह हे अजन्मा, आप हर जीव में परमात्मा के रूप में भिन्न भिन्न प्रकार से प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। किन्तु जब दर्शक अपने आपको आपके सेवक-रूप में जान लेता है, तो उसमें ऐसा द्वैत नहीं रह पाता। इस प्रकार अब मैं आपके

शाश्वत रूपों को समझने में समर्थ हूँ और भलीभाँति जानता हूँ कि परमात्मा आपके अंश मात्र हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१.९.४२) का यह श्लोक कुरुओं के पितामह भीष्मदेव ने तब कहा था, जब वे अपने जीवन के अन्तिम काल में शरशय्या पर लेटे थे। जब महाराज युधिष्ठिर मरणासन्न भीष्म से नैतिक तथा धार्मिक उपदेश ग्रहण कर रहे थे, तब उस स्थान पर अर्जुन, कृष्ण तथा उनके असंख्य मित्र, प्रशंसक, परिजन तथा ऋषि-मुनि एकत्र हुए थे। ज्योंही भीष्म का अन्तिम समय आ गया, त्योंही उन्होंने भगवान् कृष्ण की ओर देखते हुए यह श्लोक कहा था।

जिस प्रकार एक सूर्य अनेक व्यक्तियों के लिए देखने की वस्तु है, उसी तरह भगवान् कृष्ण के एक अंश, जो हर जीव के हृदय में परमात्मा रूप में रहते हैं, विविध प्रकार से दिखलाई पड़ने वाली वस्तु हैं। जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण की सनातन सेवा में अपने आपको लगाकर उनके निकट सम्पर्क में आता है, वह परमात्मा को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्थानीय अंश के रूप में देखता है। भीष्मदेव जानते थे कि परमात्मा उन भगवान् कृष्ण के अंश रूप हैं, जिन्हें वे परम, अजन्मे दिव्य रूप में समझते थे।

सेइत गोविन्द साक्षाच्चैतन्य गोसाञि ।
जीव निस्तारिते ऐछे दयालु आर नाइ ॥२२॥

सेइत गोविन्द साक्षाच्चैतन्य गोसाञि ।
जीव निस्तारिते ऐछे दयालु आर नाइ ॥ २२॥

सेइत—वह; **गोविन्द**—गोविन्द; **साक्षात्**—साक्षात्; **चैतन्य**—भगवान् चैतन्य; **गोसाञि**—गोसांई; **जीव**—पतित जीवगण; **निस्तारिते**—उद्धार के लिए; **ऐछे**—ऐसे; **दयालु**—दयालु भगवान्; **आर**—अन्य; **नाइ**—नहीं है।

अनुवाद

वही गोविन्द स्वयं चैतन्य गोसांई के रूप में प्रकट होते हैं। अन्य कोई प्रभु पतित आत्माओं का उद्धार करने में इतने दयालु नहीं हैं।

तात्पर्य

ब्रह्म तथा परमात्मा के पहलूओं के सन्दर्भ में गोविन्द का वर्णन कर चुकने

के बाद *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के लेखक अब यह सिद्ध करने के लिए तर्क पेश करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु वही व्यक्ति हैं। वही श्रीकृष्ण कृष्ण-भक्त के वेश में उन पतित मानवों का उद्धार करने के लिए इस मर्त्य लोक में अवतरित हुए हैं, जो *भगवद्गीता* की व्याख्या जानने के बाद भी भगवान् को नहीं समझ पाये। *भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष उपदेश दिया है कि परमेश्वर एक व्यक्ति हैं; निर्विशेष ब्रह्म उनका दीप्तिमान तेज है और परमात्मा उनके अंश रूप हैं। अत: सारे मनुष्यों को उपदेश दिया गया था कि सारे संसारी "वाद" को त्यागकर वे श्रीकृष्ण के मार्ग का अनुसरण करें। किन्तु अपराधियों ने इस उपदेश को ठीक से नहीं समझा, क्योंकि उनमें ज्ञान की कमी थी। अतएव अपनी अहैतुकी असीम कृपा के कारण श्रीकृष्ण श्री चैतन्य गोसांई के रूप में पुन: आये।

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक बल देकर बताते हैं कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं। वे श्रीकृष्ण के *प्रकाश* या *विलास* रूपों के विस्तार नहीं हैं। वे *स्वयं-रूप* गोविन्द हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने जो सम्बन्धित शास्त्रीय साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं, उनके अतिरिक्त भी असंख्य शास्त्रीय कथन हैं, जिनके अनुसार चैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। यहाँ पर निम्नलिखित कथन उद्धृत किये जा सकते हैं :

(१) *चैतन्य उपनिषद्* (५) से—*गौर: सर्वात्मा महापुरुषो महात्मा महायोगी त्रिगुणातीत: सत्त्वरूपो भक्तिं लोके काश्यति*—"भगवान् गौर, जो सर्वव्यापी परमात्मा हैं, वे उस महान् सन्त तथा शक्तिशाली योगी के रूप में प्रकट होते हैं, जो त्रिगुणातीत हैं और दिव्य कर्म के प्रतीक हैं। वे सारे विश्व में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करते हैं।"

(२) *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (६.७ तथा ३.१२) से :

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

"हे परमेश्वर, आप परम महेश्वर, समस्त देवताओं के आराध्य देव तथा समस्त

प्रभुओं के प्रभु हैं। आप समस्त नियामकों के नियामक, परमेश्वर, प्रत्येक पूज्य वस्तु के स्वामी हैं।"

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलाम् इमां प्राप्तिम् ईशानो ज्योतिरव्ययः॥

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् महाप्रभु हैं, जो दिव्य प्रकाश को विस्तारित करते हैं। उनके सम्पर्क में आने का अर्थ है, अविनाशी ब्रह्मज्योति के सम्पर्क में आना।"

(३) *मुण्डक उपनिषद्* (३.१.३) से :

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं।
कर्तारम् ईशं पुरुषं ब्रह्म-योनिम्॥

"जो स्वर्णिम रंग वाले भगवान्, परमेश्वर, परमकर्ता—परम ब्रह्म के उद्गम—का दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है।"

(४) *श्रीमद्भागवत* (११.५.३३-३४ तथा ७.९.३८) से :

ध्येयं सदा परिभवघ्नम् अभीष्ट दोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

"हम उन भगवान् के चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं, जिनका मनुष्य को सदैव ध्यान करना चाहिए। वे अपने भक्तों के अपमानों को नष्ट करते हैं, उनके दुःखों को दूर करते हैं और उनकी आकांक्षाओं को पूरा करते हैं। वे समस्त तीर्थों के आगार तथा समस्त मुनियों के आश्रय हैं और शिवजी तथा ब्रह्माजी द्वारा पूजनीय हैं। वे जन्म तथा मृत्यु के सागर को पार करने के लिए देवताओं की नौका हैं।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

"हम उन भगवान् के चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं, जिनका मनुष्य

को सदैव ध्यान करना चाहिए। उन्होंने अपना गृहस्थ जीवन त्याग दिया और अपनी नित्य सहचरी को त्याग दिया, जिसकी प्रशंसा स्वर्ग के निवासी तक करते हैं। वे उन पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए जंगल में गये, जो भौतिक शक्ति माया द्वारा मोंह में डाल दिए जाते हैं।"

प्रह्लाद कहते हैं :

इत्थं नृतिर्यगृषिदेव झषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत् प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सत्वम्॥

"हे प्रभु, आप मनुष्यों, पशुओं, देवताओं, ऋषियों, जलचरों इत्यादि के परिवारों में नाना अवतार लेकर संसार के सारे शत्रुओं का विनाश करते हैं। इस तरह आप संसार को दिव्य ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। हे महापुरुष, आप कलियुग में कभी-कभी प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए आप त्रियुग (केवल तीन युगों में प्रकट होने वाले) कहलाते हैं।"

(५) कृष्णयामल-तंत्र से :

पुण्यक्षेत्रे नवद्वीपे भविष्यामि शचीसुतः—मैं नवद्वीप की पवित्र भूमि में शचीदेवी के पुत्र के रूप में प्रकट हूँगा।"

(६) वायुपुराण से :

कलौ सङ्कीर्तनारम्भे भविष्यामि शची-सुतः—"कलियुग में, जब संकीर्तन आन्दोलन का शुभारम्भ होगा, तब मैं शचीदेवी के पुत्र के रूप में अवतरित हूँगा।"

(७) ब्रह्मयामल-तंत्र से :

अथवाहं धराधामे भूत्वा मद्भक्तरूपधृक्।
मायायां च भविष्यामि कलौ सङ्कीर्तनागमे॥

"कभी-कभी मैं पृथ्वी पर भक्त के वेश में प्रकट होता हूँ। विशेषतया मैं कलियुग में संकीर्तन आन्दोलन का प्रारम्भ करने के लिए शची के पुत्र के रूप में प्रकट होता हूँ।"

(८) अनन्त संहिता से :

य एव भगवान् कृष्णो राधिकाप्राणवल्लभः।
सृष्ट्यादौ स जगन्नाथो गौर आसीन्महेश्वरि॥

"साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण, जो श्रीमती राधारानी के प्राण हैं और ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार के स्वामी हैं, हे महेश्वरी, वे ही गौर रूप में प्रकट होते हैं।"

পর-ব্যোমেতে বৈসে নারায়ণ নাম ।
ষড়্-ঐশ্বর্য-পূর্ণ লক্ষ্মী-কান্ত ভগবান্ ॥২৩॥

পর-ব্যোমেতে বৈসে নারায়ণ নাম ।
ষড়্-ঐশ্বর্য্য-পূর্ণ লক্ষ্মী-কান্ত ভগবান্ ॥ ২৩॥

पर-व्योमेते—दिव्य जगत् में; **वैसे**—स्थित हैं; **नारायण**—भगवान् नारायण; **नाम**—नामक; **षट्-ऐश्वर्य्य**—छः प्रकार के ऐश्वर्य; **पूर्ण**—पूर्ण; **लक्ष्मी-कान्त**—श्रीदेवी लक्ष्मी के पति; **भगवान्**—भगवान्।

अनुवाद

दिव्य जगत् के सर्वेसर्वा भगवान् नारायण छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। वे लक्ष्मीपति भगवान् हैं।

বেদ, ভাগবত, উপনিষৎ, আগম ।
'পূর্ণ-তত্ত্ব' যাঁরে কহে, নাহি যাঁর সম ॥২৪॥

वेद, भागवत, उपनिषत्, आगम ।
'पूर्ण-तत्त्व' ग्राँरे कहे, नाहि ग्राँर सम ॥ २४॥

वेद—वेद; **भागवत**—*श्रीमद्भागवतम्;* **उपनिषत्**—उपनिषद्; **आगम**—अन्य दिव्य साहित्य; **पूर्ण-तत्त्व**—पूर्ण सत्य; **ग्राँरे**—जिनका; **कहे**—वे कहते हैं; **नाहि**—नहीं है; **ग्राँर**—जिनके; **सम**—समान।

अनुवाद

परमेश्वर वे हैं, जिन्हें वेदों, उपनिषदों तथा अन्य दिव्य साहित्य में परम पूर्ण के रूप में वर्णित किये गये हैं। उनके तुल्य कोई नहीं है।

तात्पर्य

वेदों में परम सत्य के साकार स्वरूप विषयक अनेक प्रामाणिक कथन मिलते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

(१) *ऋक् संहिता* (१.२२.२०) से :

तद् विष्णोः परमं पदं।
सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥

"भगवान् विष्णु परम सत्य हैं, जिनके चरणकमलों का दर्शन पाने के लिए सारे देवता सदैव लालायित रहते हैं। वे सूर्यदेव की भाँति अपनी शक्ति-किरणों से हर वस्तु में व्याप्त हैं। वे अपूर्ण आँखों को निर्विशेष लगते हैं।"

(२) नारायणाथर्व-शिर उपनिषद् (१-२) से :

नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात् प्रवर्तन्ते नारायणे प्रलीयन्ते... अथ नित्यो नारायणः... नारायण एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्... शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। "नारायण से ही हर वस्तु उत्पन्न होती है, उन्हीं के द्वारा ही हर वस्तु का पालन होता है और उन्हीं में ही हर वस्तु का विलय होता है। इसलिए नारायण शाश्वत रूप से विद्यमान रहते हैं। इस समय जो भी वस्तु विद्यमान है या जो भविष्य में उत्पन्न होगी, वह शुद्ध अर्चाविग्रह नारायण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। नारायण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।"

(३) *नारायण उपनिषद्* (१.४) से : *यतः प्रसूता जगतः प्रसूती*—"नारायण ही वे स्रोत हैं, जिनसे समस्त ब्रह्माण्ड उद्भूत हुआ है।"

(४) हयशीर्ष पञ्चरात्र से : परमात्मा हरिर्देवः—"हरि परमेश्वर हैं।"

(५) *श्रीमद्भागवत* (११.३.३४-३५) से :

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्म-वित्तमाः॥

"हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, कृपया हमें नारायण के पद के विषय में बताइए, जो ब्रह्म तथा परमात्मा के नाम से भी विख्यात हैं।"

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र॥

"हे राजन्, उन्हें जानो जिनका कोई कारण नहीं है, फिर भी वे सृष्टि, पालन एवं प्रलय के कारण हैं। वे चेतना की तीन अवस्थाओं में—यथा जागृति, स्वप्न तथा प्रगाढ़ निद्रा—तथा इनसे परे भी विद्यमान हैं। वे शरीर, इन्द्रियों, प्राण तथा हृदय को जीवन शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे वे गति करते हैं। उन्हें परम पूर्ण के रूप में जानो।"

ভক্তি-যোগে ভক্ত পায় যাঁহার দর্শন ।
সূর্য যেন সবিগ্রহ দেখে দেব-গণ ॥২৫॥

ভক্তি-য়োগে ভক্ত পায় য়াঁহার দর্শন ।
সূর্য্য য়েন সবিগ্রহ দেখে দেব-গণ ॥ ২৫॥

ভক্তি-য়োগে—भक्ति योग से; **ভক্ত**—भक्त; **পায়**—पाता है; **য়াঁহার**—जिनका; **দর্শন**—दर्शन; **সূর্য্য**—सूर्यदेव; **য়েন**—जैसा; **স-বিগ্রহ**—विग्रह सहित, रूप सहित; **দেখে**—देखते हैं; **দেব-গণ**—स्वर्ग के निवासी।

अनुवाद

भक्तगण अपनी सेवा के माध्यम से भगवान् को उसी तरह देखते हैं, जिस प्रकार स्वर्ग के निवासी सूर्यदेव को देखते हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का एक शाश्वत रूप है, जिसे भौतिक आँखों से या मानसिक कल्पना से नहीं देखा जा सकता। केवल दिव्य भक्ति द्वारा भगवान् के इस दिव्य रूप को समझा जा सकता है। यहाँ पर इसकी तुलना सूर्यदेव के व्यक्तित्व के दर्शन करने की योग्यताओं से की गई है। सूर्यदेव एक व्यक्ति हैं, जो यद्यपि हमारी आँखों को नहीं दिखते, किन्तु उन्हें देवतागण उच्चतर लोकों से देख सकते हैं, क्योंकि उनकी आँखें सूर्यदेव को चारों ओर से घेरने वाले तीव्र प्रकाश के पार देखने के लिए सक्षम हैं। प्रत्येक ग्रह का अपना वायुमण्डल

होता है, जो भौतिक प्रकृति की व्यवस्था पर निर्भर करता है। अतएव किसी विशेष ग्रह तक पहुँचने के लिए विशेष शारीरिक बनावट होनी आवश्यक है। पृथ्वी के निवासी चन्द्रमा तक पहुँचने में सक्षम हो सकते हैं, किन्तु स्वर्ग के निवासी सूर्य जैसे अग्निमय मंडल में भी पहुँच सकते हैं। पृथ्वी के मनुष्य के लिए जो असम्भव है, वह स्वर्ग के देवताओं के लिए सुगम है, क्योंकि उनके शरीर भिन्न प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार परम भगवान् का दर्शन करने के लिए मनुष्य के पास भक्ति की आध्यात्मिक आँखें होनी चाहिए। जो परम सत्य के विषय में वैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार दिव्य ध्वनि की सहायता लिये बिना कल्पना करने के आदी हैं, उनके लिए भगवान् दुर्लभ हैं । आरोह पद्धति से परम सत्य के निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है किन्तु परम दिव्य पुरुष का नहीं।

জ্ঞান-যোগ-মার্গে তাঁরে ভজে যেই সব ।
ব্রহ্ম-আত্ম-রূপে তাঁরে করে অনুভব ॥২৬॥

ज्ञान-ग्रोग-मार्गे ताँरे भजे ग्रेइ सब ।
ब्रह्म-आत्म-रूपे ताँरे करे अनुभव ॥ २६ ॥

ज्ञान—दार्शनिक चिन्तन के; **ग्रोग**—और गूढ़ योग के; **मार्गे**—मार्गों पर; **ताँरे**—उनकी; **भजे**—पूजा करते हैं; **ग्रेइ**—जो; **सब**—सब; **ब्रह्म**—निर्विशेष ब्रह्म के; **आत्म**—और परमात्मा के; **रूपे**—रूपों में; **ताँरे**—उन्हें; **करे**—करते हैं; **अनुभव**—देखते हैं, अनुभूति करते हैं।

अनुवाद

जो लोग ज्ञान तथा योग के मार्गों पर चलते हैं, वे भगवान् ही की पूजा करते हैं, क्योंकि वे निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में उन्हीं का अनुभव करते हैं।

तात्पर्य

जो लोग परम सत्य की खोज करने के लिए मानसिक तर्कवितर्क (ज्ञानमार्ग) में आसक्त हैं या योग में स्थित होकर ध्यान करना चाहते हैं, वे क्रमशः भगवान् के निर्विशेष तेज तथा उनके अंश (परमात्मा) के पास पहुँचते हैं। ऐसे व्यक्ति भगवान् के शाश्वत रूप का अनुभव नहीं कर सकते।

উপাসনা-ভেদে জানি ঈশ্বর-মহিমা ।
অতএব সূর্য তাঁর দিয়েত উপমা ॥২৭॥

উপাসনা-ভেদে জানি ঈশ্বর-মহিমা ।
অতএব সূর্য্য তাঁর দিয়েত উপমা ॥ ২৭॥

উপাসনা-ভেদে—পূজা के विविध मार्गों से; **জানি**—मैं जानता हूँ; **ঈশ্বর**—परम ईश्वर की; **মহিমা**—महिमा; **অতএব**—इसलिए; **সূর্য্য**—सूर्य; **তাঁর**—उनकी; **দিয়েত**—दी गई थी; **উপমা**—उपमा।

अनुवाद

इसलिए पूजा के विविध प्रकारों से भगवान् की महिमा को उसी प्रकार समझा जा सकता है, जिस प्रकार सूर्य की उपमा से पता लगता है।

সেই নারায়ণ কৃষ্ণের স্বরূপ-অভেদ ।
একই বিগ্রহ, কিন্তু আকার-বিভেদ ॥২৮॥

সেই নারায়ণ কৃষ্ণের স্বরূপ-অভেদ ।
একই বিগ্রহ, কিন্তু আকার-বিভেদ ॥ ২৮॥

সেই—वे; **নারায়ণ**—भगवान् नारायण; **কৃষ্ণের**—भगवान् कृष्ण का; **স্বরূপ**—मूल स्वरूप; **অভেদ**—अभिन्न; **একই**—एक; **বিগ্রহ**—पहचान; **কিন্তু**—किन्तु; **আকার**—आकार; **বিভেদ**—अन्तर।

अनुवाद

नारायण तथा श्रीकृष्ण एक ही ईश्वर हैं, किन्तु एक होकर भी उनके शारीरिक लक्षण भिन्न हैं।

ইঁহোত দ্বি-ভুজ, তিঁহো ধরে চারি হাথ ।
ইঁহো বেণু ধরে, তিঁহো চক্রাদিক সাথ ॥২৯॥

ইঁহোত দ্বি-ভুজ, তিঁহো ধরে চারি হাথ ।
ইঁহো বেণু ধরে, তিঁহো চক্রাদিক সাথ ॥ ২৯॥

ইঁহোত—ये; **দ্বি-ভুজ**—द्विभुज धारी; **তিঁহো**—वे; **ধরে**—धारण करते हैं; **চারি**—चार; **হাথ**—भुजाएँ; **ইঁহো**—ये; **বেণু**—बाँसुरी; **ধরে**—धारण किए हैं; **তিঁহো**—वे; **চক্র-আদিক**—चक्र, आदि; **সাথ**—के सहित।

अनुवाद

इन ईश्वर (श्रीकृष्ण) के दो हाथ हैं और वे मुरली धारण करते हैं, जबकि दूसरे (नारायण) के चार हाथ हैं, जिनमें वे शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करते हैं।

तात्पर्य

नारायण श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। वस्तुतः वे एक ही व्यक्ति हैं, जो भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं, जिस प्रकार उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अपने कार्यालय तथा अपने घर में भिन्न-भिन्न रूप में रहता है। नारायण रूप में ईश्वर चार भुजाओं से युक्त होते हैं, जबकि कृष्ण रूप में वे दो हाथों से युक्त होते हैं।

नारायणस्त्वं न हि सर्व-देहिनाम्
आत्मास्यधीशाखिल-लोक-साक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नर-भू-जलायनात्
तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ ३० ॥

नारायणस्त्वं न हि सर्व-देहिनाम्
आत्मास्यधीशाखिल-लोक-साक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नर-भू-जलायनात्
तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ ३० ॥

नारायणः—भगवान् नारायण; **त्वम्**—आप; **न**—नहीं; **हि**—निश्चय ही; **सर्व**—सभी; **देहिनाम्**—देहधारियों के; **आत्मा**—परमात्मा; **असि**—आप हैं; **अधीश**—हे भगवान्; **अखिल-लोक**—अखिल लोकों के; **साक्षी**—साक्षी; **नारायणः**—नारायण के नाम से प्रसिद्ध; **अङ्गम्**—पूर्णांश; **नर**—नर का; **भू**—उत्पन्न; **जल**—जल में; **अयनात्**—आश्रय स्थान के कारण; **तत्**—वह; **च**—तथा; **अपि**—निश्चय ही; **सत्यम्**—सर्वोच्च सत्य; **न**—नहीं; **तव**—आपका; **एव**—बिल्कुल; **माया**—माया।

अनुवाद

"हे प्रभुओं के प्रभु! आप सारी सृष्टि के द्रष्टा हैं। आप निस्सन्देह हर एक के प्रियतम प्राण हैं। तो क्या आप मेरे पिता श्री नारायण नहीं हैं? नारायण का अर्थ है, वे जिसका घर जल में है, जो 'नर' (गर्भोदकशायी

विष्णु) से उत्पन्न हुए हैं और वे नारायण तो आपके अंश हैं। आपके सारे पूर्ण अंश दिव्य हैं। वे परम पूर्ण हैं और वे माया द्वारा सृजित नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह कथन *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.१४) से लिया गया है। इसे ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण की स्तुति करते समय कहा था, जब ब्रह्मा भगवान् कृष्ण द्वारा अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन किये जाने पर पराजित हो गये थे। ब्रह्मा ने यह देखने के लिए भगवान् कृष्ण की परीक्षा ली थी कि क्या सचमुच पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही गोप-बालक के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। ब्रह्मा ने अन्य सारे बालकों को उनके बछड़ों समेत चरागाह से चुरा लिया था, किन्तु चरागाह लौटकर उन्होंने देखा कि सारे बालक तथा बछड़े वहीं पर थे, क्योंकि भगवान् कृष्ण ने उन्हें फिर से उत्पन्न कर दिया था। जब ब्रह्मा ने कृष्ण की यह योगशक्ति देखी, तो उन्होंने हार मान ली और उन्होंने भगवान् की स्तुति सृष्टि के स्वामी एवं हर वस्तु के द्रष्टा के रूप में तथा हर एक जीव के भीतर स्थित परमात्मा के रूप में एवं सबको प्रिय कहकर की। वही भगवान् कृष्ण नारायण अर्थात् ब्रह्मा के पिता हैं, क्योंकि भगवान् कृष्ण के पूर्ण अंश गर्भोदकशायी विष्णु ने अपने आपको गर्भ सागर में स्थापित करके अपने शरीर से ब्रह्मा को जन्म दिया था। कारण सागर में महाविष्णु तथा जन-जन के हृदय में परमात्मा रूप क्षीरोदकशायी विष्णु भी परम सत्य के दिव्य विस्तार हैं।

শিশু বত্স হরি' ব্রহ্মা করি অপরাধ ।
অপরাধ ক্ষমাইতে মাগেন প্রসাদ ॥ ৩১ ॥

शिशु वत्स हरि' ब्रह्मा करि अपराध ।
अपराध क्षमाइते मागेन प्रसाद ॥ ३१ ॥

शिशु—साथी; **वत्स**—बछड़े; **हरि'**—चुराकर; **ब्रह्मा**—ब्रह्माजी; **करि**—करना; **अपराध**—अपराध; **अपराध**—अपराध; **क्षमाइते**—क्षमा करने के लिए; **मागेन**—प्रार्थना की; **प्रसाद**—दया।

अनुवाद

कृष्ण के साथियों तथा बछड़ों को चुराने का अपराध करने के बाद

ब्रह्मा ने अपने अपराध के लिए भगवान् से क्षमा याचना की और दया करने की याचना की।

তোমার নাভি-পদ্ম হৈতে আমার জন্মোদয় ।
তুমি পিতা-মাতা, আমি তোমার তনয় ॥৩২॥

তোমার নাভি-পদ্ম হৈতে আমার জন্মোদয় ।
তুমি পিতা-মাতা, আমি তোমার তনয় ॥ ৩২ ॥

তোমার—आपके; **নাভি-পদ্ম**—नाभि कमल; **হৈতে**—से; **আমার**—मेरा; **জন্ম-উদয়**—जन्म; **তুমি**—आप; **পিতা**—पिता; **মাতা**—माता; **আমি**—मैं; **তোমার**—आपका; **তনয়**—पुत्र।

अनुवाद

"मैंने उस कमल से जन्म लिया, जो आपकी नाभि से निकला था। इस तरह आप मेरे पिता-माता दोनो हैं और मैं आपका पुत्र हूँ।

পিতা মাতা বালকের না লয় অপরাধ ।
অপরাধ ক্ষম, মোরে করহ প্রসাদ ॥৩৩॥

পিতা মাতা বালকের না লয় অপরাধ ।
অপরাধ ক্ষম, মোরে করহ প্রসাদ ॥ ৩৩ ॥

পিতা—पिता; **মাতা**—माता; **বালকের**—बालक का; **না**—नहीं; **লয়**—गम्भीरता से लेते हैं; **অপরাধ**—अपराध; **অপরাধ**—अपराध; **ক্ষম**—कृपया क्षमा करें; **মোরে**—मुझे; **করহ**—कृपया दर्शाएँ; **প্রসাদ**—दया।

अनुवाद

"माता-पिता अपनी सन्तान के अपराधों को कभी गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते। अतएव मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूँ और आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।"

কৃষ্ণ কহেন—ব্রহ্মা, তোমার পিতা নারায়ণ ।
আমি গোপ, তুমি কৈছে আমার নন্দন ॥৩৪॥

কৃষ্ণ কহেন—ব্রহ্মা, তোমার পিতা নারায়ণ ।
আমি গোপ, তুমি কৈছে আমার নন্দন ॥ ৩৪ ॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **कहेन**—कहते हैं; **ब्रह्मा**—हे ब्रह्माजी; **तोमार**—आपके; **पिता**—पिता; **नारायण**—भगवान् नारायण; **आमि**—मैं (हूँ); **गोप**—ग्वाला; **तुमि**—आप; **कैछे**—कैसे; **आमार**—मेरे; **नन्दन**—पुत्र।

अनुवाद

श्रीकृष्ण ने कहा, "हे ब्रह्मा! आपके पिता तो नारायण हैं। मैं तो एक गोप-बालक हूँ। आप मेरे पुत्र किस तरह हो सकते हैं?"

ब्रह्मा बलेन, तुमि कि ना हओ नारायण ।
तुमि नारायण—शुन ताहार कारण ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा बलेन, तुमि कि ना हओ नारायण ।
तुमि नारायण—शुन ताहार कारण ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; **बलेन**—कहते हैं; **तुमि**—आप; **कि ना हओ**—क्या नहीं हो; **नारायण**—भगवान् नारायण; **तुमि**—आप; **नारायण**—भगवान् नारायण; **शुन**—कृपया सुनें; **ताहार**—उसका; **कारण**—कारण।

अनुवाद

ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "क्या आप नारायण नहीं हैं? आप अवश्य नारायण हैं। कृपया सुनें, मैं इसके प्रमाण देता हूँ।

प्राकृताप्राकृत-सृष्ट्ये यत जीव-रूप ।
ताहार ये आत्मा तुमि मूल-स्वरूप ॥ ३६ ॥

प्राकृताप्राकृत-सृष्ट्ये यत जीव-रूप ।
ताहार ये आत्मा तुमि मूल-स्वरूप ॥ ३६ ॥

प्राकृत—भौतिक; **अप्राकृत**—आध्यात्मिक; **सृष्ट्ये**—सृष्टियों में; **यत**—जितने भी हों; **जीव-रूप**—जीव; **ताहार**—उनके; **ये**—जो; **आत्मा**—परमात्मा; **तुमि**—आप; **मूल-स्वरूप**—मूल स्रोत।

अनुवाद

"भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों के सारे जीव आखिर आप से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि आप उन सबके परमात्मा हैं।

तात्पर्य

यह वैश्विक प्राकट्य भौतिक प्रकृति के तीन गुणों की पारस्परिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ है। दिव्य जगत् में ऐसे भौतिक गुण नहीं होते, फिर भी यह आध्यात्मिक विविधताओं से परिपूर्ण होता है। उस आध्यात्मिक जगत् में असंख्य जीव भी हैं, जो नित्यमुक्त जीव हैं और भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं। भौतिक जगत् के भीतर रहने वाले बद्धजीव भौतिक प्रकृति के तीन तापों एवं कष्टों से पीड़ित होते रहते हैं। वे नाना योनियों में विद्यमान रहते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर की दिव्य प्रेमाभक्ति से सदैव विमुख हैं।

संकर्षण समस्त जीवों के मूल उद्गम हैं, क्योंकि सारे जीव उनकी तटस्था शक्ति के विस्तार हैं। इनमें से कुछ भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हैं, जबकि अन्य आध्यात्मिक प्रकृति के संरक्षण में हैं। भौतिक प्रकृति आध्यात्मिक प्रकृति के बद्ध रूप का प्राकट्य है, जिस प्रकार धुआँ अग्नि की बद्ध अवस्था है। धुआँ अग्नि पर निर्भर है, किन्तु प्रज्ज्वलित अग्नि में धुएँ के लिए कोई स्थान नहीं रहता। धुआँ बाधक है, जबकि अग्नि सेवा करती है। दिव्य जगत् के निवासियों का सेवाभाव केन्द्रीय भोक्ता भगवान् के साथ पाँच प्रकार के सम्बन्धों में प्रकट होता है। भौतिक जगत् में हर व्यक्ति संसारी सुख तथा दुःख का आत्मकेन्द्रित भोक्ता होता है। वह अपने आपको सर्वेसर्वा मानकर माया का भोग करना चाहता है, किन्तु वह सफल नहीं हो पाता, क्योंकि वह स्वतन्त्र नहीं होता। वह भगवान् संकर्षण की शक्ति का सूक्ष्म कण-मात्र होता है। सारे जीव भगवान् के वश में हैं, इसीलिए वे नारायण कहलाते हैं।

पृथ्वी यैछे घट-कुलेर कारण आश्रय ।
जीवेर निदान तुमि, तुमि सर्वाश्रय ॥ ३७॥

पृथ्वी ग्रैछे घट-कुलेर कारण आश्रय ।
जीवेर निदान तुमि, तुमि सर्वाश्रय ॥ ३७॥

पृथ्वी—पृथ्वी; **ग्रैछे**—जैसे; **घट**—मिट्टी के मटकों के; **कुलेर**—समूह का; **कारण**—कारण; **आश्रय**—आश्रय; **जीवेर**—जीवों का; **निदान**—मूल कारण; **तुमि**—आप; **तुमि**—आप; **सर्व-आश्रय**—सबके आश्रय।

अनुवाद

"जिस प्रकार पृथ्वी मिट्टी के बने समस्त पात्रों (घड़ों) का मूल कारण एवं आश्रय है, उसी प्रकार आप समस्त जीवों के परम कारण एवं आश्रय हैं।

तात्पर्य

जिस प्रकार यह विस्तृत पृथ्वी समस्त मिट्टी के पात्रों की सामग्री की स्रोत है, उसी प्रकार परमात्मा समस्त जीवों की सारी सामग्री के मूल स्रोत हैं। समस्त कारणों के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही सारे जीवों के कारण हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१०) में की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं—*बीजं मां सर्वभूतानाम्* ("मैं सारे जीवों का बीज हूँ") और उपनिषदों में कहा गया है—*नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम्* ("भगवान् सारे शाश्वत जीवों में परम अग्रणी हैं")।

भगवान् समस्त जड़ तथा चेतन जगत् के स्रोत हैं। *विशिष्टाद्वैतवाद* दर्शन के समर्थक *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या यह कहकर करते हैं कि यद्यपि जीव के दो प्रकार के शरीर होते हैं—सूक्ष्म (मन, बुद्धि तथा अहंकार) एवं स्थूल (पाँच मूल तत्त्वों से युक्त) और यद्यपि वह इस प्रकार तीन शारीरिक आयामों (स्थूल, सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक) में रहता है, फिर भी वह अन्ततः आध्यात्मिक जीव ही होता है। इसी प्रकार भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों को उत्पन्न करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परमात्मा हैं। जिस प्रकार व्यष्टि आत्मा अपने स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों में प्रायः एकसमान है, उसी प्रकार भगवान् भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों में प्रायः एकरूप जैसे हैं। यह भौतिक जगत् पदार्थ पर आधिपत्य जताने का प्रयास कर रहे बद्धजीवों से भरा है। वह भौतिक जगत् भगवान् की बहिरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है और आध्यात्मिक जगत् जो भगवान् के पूर्ण सेवकों से भरा है, वह भगवान् की अंतरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है। चूँकि सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के क्षुद्र स्फुलिंग हैं, अतएव भगवान् भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही जगतों में परमात्मा हैं। भगवान् चैतन्य के अनुयायी वैष्णव *अचिन्त्य-भेदाभेद* तत्त्व के दर्शन पर बल देते हैं, जिसके अनुसार भगवान् हर वस्तु के कार्य-कारण होने के कारण

अचिन्त्य रूप से एक ही साथ अपनी शक्ति की अभिव्यक्तियों के साथ एक तथा उनसे भिन्न हैं।

'नार'-शब्दे कहे सर्व जीवेर निचय ।
'अयन'-शब्देते कहे ताहार आश्रय ॥ ३८ ॥

'नार'-शब्दे कहे सर्व जीवेर निचय ।
'अयन'-शब्देते कहे ताहार आश्रय ॥ ३८ ॥

नार-शब्दे—नार शब्द से; **कहे**—अर्थ होता है; **सर्व जीवेर**—सभी जीवों का; **निचय**—समूह; **अयन-शब्देते**—*अयन* शब्द से; **कहे**—अर्थ होता है; **ताहार**—उनका; **आश्रय**—आश्रय।

अनुवाद

"'नार' शब्द समस्त जीवों के समुच्चय को बताता है और 'अयन' शब्द उन सबके आश्रय को बतलाने वाला है।

अतएव तुमि हओ मूल नारायण ।
एइ एक हेतु, शुन द्वितीय कारण ॥ ३९ ॥

अतएव तुमि हओ मूल नारायण ।
एइ एक हेतु, शुन द्वितीय कारण ॥ ३९ ॥

अतएव—इसलिए; **तुमि**—आप; **हओ**—हैं; **मूल**—मूल; **नारायण**—नारायण; **एइ**—यह; **एक**—एक; **हेतु**—कारण; **शुन**—कृपया सुनें; **द्वितीय**—दूसरा; **कारण**—कारण।

अनुवाद

"अतएव आप आदि नारायण हैं। यह हुआ पहला कारण। अब मैं दूसरा कारण बताता हूँ, कृपया उसे सुनें।

जीवेर ईश्वर—पुरुषादि अवतार ।
ताँहा सबा हैते तोमार ऐश्वर्य अपार ॥ ४० ॥

जीवेर ईश्वर—पुरुषादि अवतार ।
ताँहा सबा हैते तोमार ऐश्वर्य अपार ॥ ४० ॥

जीवेर—जीवों के; **ईश्वर**—परम भगवान्; **पुरुष-आदि**—पुरुष अवतार आदि; **अवतार**—अवतार; **ताँहा**—उन; **सबा**—सब; **हैते**—अपेक्षाकृत; **तोमार**—आपका; **ऐश्वर्य**—ऐश्वर्य; **अपार**—असीम।

अनुवाद

"जीवों के प्रत्यक्ष ईश्वर पुरुष अवतार हैं। किन्तु आपका ऐश्वर्य एवं शक्ति उनसे कहीं अधिक उन्नत हैं।

अतएव अधीश्वर तुमि सर्व पिता ।
तोमार शक्तिते ताँरा जगत्रक्षिता ॥ ४१ ॥

अतएव अधीश्वर तुमि सर्व पिता ।
तोमार शक्तिते ताँरा जगत्रक्षिता ॥ ४१ ॥

अतएव—अतएव; **अधीश्वर**—आदि भगवान्; **तुमि**—आप; **सर्व**—सबके; **पिता**—पिता; **तोमार**—आपकी; **शक्तिते**—शक्ति से; **ताँरा**—वे; **जगत्**—सृष्टि के; **रक्षिता**—रक्षक।

अनुवाद

"अतएव आप हर एक के आदि पिता, आदि स्वामी हैं। वे (पुरुषावतार) आपकी शक्ति से ही ब्रह्माण्डों के रक्षक हैं।

नारेर अयन याते करह पालन ।
अतएव हओ तुमि मूल नारायण ॥ ४२ ॥

नारेर अयन याते करह पालन ।
अतएव हओ तुमि मूल नारायण ॥ ४२ ॥

नारेर—जीवों का; **अयन**—आश्रय; **याते**—जिनको; **करह**—आप देते हैं; **पालन**—पालन-पोषण; **अतएव**—अतएव; **हओ**—हैं; **तुमि**—आप; **मूल**—मूल; **नारायण**—नारायण।

अनुवाद

"चूँकि आप समस्त जीवों के आश्रयों की रक्षा करते हैं, अतएव आप मूल नारायण हैं।

तात्पर्य

भौतिक जगतों में जीवों के अधिष्ठाता देव तीन पुरुष अवतार हैं। किन्तु

श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित शक्ति इन पुरुषों से कहीं अधिक विस्तृत है। अतएव श्रीकृष्ण आदि पिता तथा स्वामी हैं, जो अपने विभिन्न पूर्ण अंशों के माध्यम से समस्त सृष्टियों की रक्षा करते हैं। चूँकि वे जीव-समुदाय के आश्रयों को भी धारण करते हैं, अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्रीकृष्ण आदि (मूल) नारायण हैं।

तृतीय कारण शुन श्री-भगवान् ।
अनन्त ब्रह्माण्ड बहु वैकुण्ठादि धाम ॥ ४३ ॥

तृतीय कारण शुन श्री-भगवान् ।
अनन्त ब्रह्माण्ड बहु वैकुण्ठादि धाम ॥ ४३ ॥

तृतीय—तीसरा; **कारण**—कारण; **शुन**—कृपया सुनें; **श्री-भगवान्**—हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **अनन्त**—अनन्त; **ब्रह्म-अण्ड**—ब्रह्माण्ड; **बहु**—बहुत; **वैकुण्ठ-आदि**—वैकुण्ठ आदि; **धाम**—धाम।

अनुवाद

"हे प्रभु! हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्! कृपया मेरे तीसरे कारण को सुनें। ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और दिव्य वैकुण्ठ लोक अनेक हैं।

इथे यत जीव, तार त्रै-कालिक कर्म ।
ताहा देख, साक्षी तुमि, जान सब मर्म ॥ ४४ ॥

इथे यत जीव, तार त्रै-कालिक कर्म ।
ताहा देख, साक्षी तुमि, जान सब मर्म ॥ ४४ ॥

इथे—इनमें; **यत**—जितने; **जीव**—जीव; **तार**—उनके; **त्रै-कालिक**—भूत, वर्तमान और भविष्य; **कर्म**—कर्म; **ताहा**—वे, जो; **देख**—आप देखते हैं; **साक्षि**—साक्षी; **तुमि**—आप; **जान**—आप जानते हैं; **सब**—सब का; **मर्म**—भेद।

अनुवाद

"आप इस भौतिक जगत् में तथा दिव्य जगत् दोनों में समस्त जीवों के भूत, वर्तमान तथा भविष्य के समस्त कर्मों को देखते हैं। चूँकि आप इन सब कर्मों के साक्षी हैं, अतः आप सब का सार जानते हैं।

তোমার দর্শনে সর্ব জগতের স্থিতি ।
তুমি না দেখিলে কারো নাহি স্থিতি গতি ॥ ৪৫॥

तोमार दर्शने सर्व जगतेर स्थिति ।
तुमि ना देखिले कारो नाहि स्थिति गति ॥ ४५ ॥

तोमार—आपके; **दर्शने**—दर्शन से; **सर्व**—सब; **जगतेर**—ब्रह्माण्ड का; **स्थिति**—पालन-पोषण; **तुमि**—आप; **ना देखिले**—नहीं देख रहे हो; **कारो**—किसी का; **नाहि**—नहीं है; **स्थिति**—रुकना; **गति**—चलना।

अनुवाद

"सारे जगत् इसलिए विद्यमान हैं, क्योंकि उन पर आपका निरीक्षण है। आपके निरीक्षण के बिना कोई न तो जीवित रह सकता है, न हिल सकता है और न अस्तित्व बनाये रख सकता है।

নারের অয়ন যাতে কর দরশন ।
তাহাতেও হও তুমি মূল নারায়ণ ॥ ৪৬॥

नारेर अयन ग्राते कर दरशन ।
ताहातेओ हओ तुमि मूल नारायण ॥ ४६ ॥

नारेर—जीवों की; **अयन**—गति; **ग्राते**—क्योंकि; **कर**—आप करते हैं; **दरशन**—दर्शन; **ताहातेओ**—अत:; **हओ**—हैं; **तुमि**—आप; **मूल**—मूल; **नारायण**—नारायण।

अनुवाद

"आप सारे जीवों की गतियों का निरीक्षण करते हैं। इसलिए भी आप आदि भगवान् नारायण हैं।"

तात्पर्य

श्रीकृष्ण अपने परमात्मा रूप में दिव्य तथा भौतिक सृष्टि दोनों के ही सभी जीवों के हृदयों में वास करते हैं। परमात्मा रूप में वे समस्त जीवों के भूत, वर्तमान तथा भविष्य में संपादित समस्त कर्मों का अवलोकन करते हैं। श्रीकृष्ण जानते हैं कि जीवों ने गत सैकड़ों-हजारों जन्मों में कौन-से कर्म किये, वे जो कुछ अब कर रहे हैं उसे देखते हैं, अतएव वे उनके वर्तमान कर्मों के उन फलों से अवगत रहते हैं, जो भविष्य में फलित होंगे। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा

गया है—भौतिक शक्ति के ऊपर उनके दृष्टिपात करते ही सम्पूर्ण विराट् जगत् उत्पन्न हो जाता है। उनकी अध्यक्षता के बिना कुछ भी अस्तित्व में रह नहीं सकता। चूँकि वे उस स्थान को भी देख सकते हैं, जहाँ समस्त जीव-समुच्चय आश्रय लेता है, अतएव वे मूल नारायण हैं।

कृष्ण कहेन—ब्रह्मा, तोमार ना बुझि वचन ।
जीव-हृदि, जले वैसे सेइ नारायण ॥ ४७॥

कृष्ण कहेन—ब्रह्मा, तोमार ना बुझि वचन ।
जीव-हृदि, जले वैसे सेइ नारायण ॥ ४७॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **कहेन**—कहते हैं; **ब्रह्मा**—हे ब्रह्मा; **तोमार**—आपका; **ना**—नहीं; **बुझि**—मैं समझता हूँ; **वचन**—वचन, कथन; **जीव**—जीव का; **हृदि**—हृदय में; **जले**—जल में; **वैसे**—बैठे हैं; **सेइ**—वे; **नारायण**—भगवान् नारायण।

अनुवाद

कृष्ण ने कहा, "हे ब्रह्मा! जो आप कह रहे हैं, उसे मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। भगवान् नारायण तो वे हैं, जो समस्त जीवों के हृदयों में आसीन रहते हैं और कारण सागर के जल में शयन करते हैं।"

ब्रह्मा कहे—जले जीवे येई नारायण ।
से सब तोमार अंश—ए सत्य वचन ॥ ४८॥

ब्रह्मा कहे—जले जीवे येइ नारायण ।
से सब तोमार अंश—ए सत्य वचन ॥ ४८॥

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; **कहे**—कहते हैं; **जले**—जल में; **जीवे**—जीव में; **येइ**—जो; **नारायण**—नारायण; **से**—वे; **सब**—सब; **तोमार**—आपके; **अंश**—पूर्ण अंश; **ए**—यह; **सत्य**—सत्य; **वचन**—वचन।

अनुवाद

ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "मैंने जो कहा है, वह सत्य है। वही भगवान् नारायण जो जल में तथा सारे जीवों के हृदयों में रहते हैं, आपके अंश मात्र हैं।

কারণাব্ধি-গর্ভোদক-ক্ষীরোদক-শায়ী ।
মায়া-দ্বারে সৃষ্টি করে, তাতে সব মায়ী ॥৪৯॥

কারণাব্ধি-গর্ভোদক-ক্ষীরোদক-শায়ী ।
মায়া-দ্বারে সৃষ্টি করে, তাতে সব মায়ী ॥৪৯॥

কারণ-অব্ধি—কারণোদকশায়ী বিষ্ণু; **গর্ভ-উদক**—গর্ভোদকশায়ী বিষ্ণু; **ক্ষীর-উদক-শায়ী**—ক্ষীরোদকশায়ী বিষ্ণু; **মায়া-দ্বারে**—ভৌতিক শক্তি সে; **সৃষ্টি**—সৃষ্টি; **করে**—বে করতে হৈঁ; **তাতে**—অতঃ; **সব**—সব; **মায়ী**—মায়াবী।

অনুবাদ

"নারায়ণ কে কারণোদকশায়ী, গর্ভোদকশায়ী তথা ক্ষীরোদকশায়ী রূপ ভৌতিক শক্তি কে সহযোগ সে সৃজন কার্য করতে হৈঁ। ইস প্রকার বে মায়া সে জুড়ে হুএ হৈঁ।

সেই তিন জল-শায়ী সর্ব-অন্তর্যামী ।
ব্রহ্মাণ্ড-বৃন্দের আত্মা যে পুরুষ-নামী ॥৫০॥

সেই তিন জল-শায়ী সর্ব-অন্তর্যামী ।
ব্রহ্মাণ্ড-বৃন্দের আত্মা যে পুরুষ-নামী ॥৫০॥

সেই—বে; **তিন**—তীন; **জল-শায়ী**—জল মেঁ লেটে হুএ; **সর্ব**—সবকে; **অন্তঃ র্যামী**—অন্তর্যামী; **ব্রহ্ম-অণ্ড**—ব্রহ্মাণ্ডোঁ কে; **বৃন্দের**—সমূহ কে; **আত্মা**—পরমাত্মা; **যে**—জো; **পুরুষ**—পুরুষ; **নামী**—নামক।

অনুবাদ

"জল মেঁ শয়ন করনে বালে যে তীনোঁ বিষ্ণু সবকে পরমাত্মা হৈঁ। সমস্ত ব্রহ্মাণ্ডোঁ কে পরমাত্মা প্রথম পুরুষ কে নাম সে বিখ্যাত হৈঁ।

হিরণ্য-গর্ভের আত্মা গর্ভোদক-শায়ী ।
ব্যষ্টি-জীব-অন্তর্যামী ক্ষীরোদক-শায়ী ॥৫১॥

হিরণ্য-গর্ভের আত্মা গর্ভোদক-শায়ী ।
ব্যষ্টি-জীব-অন্তর্যামী ক্ষীরোদক-শায়ী ॥৫১॥

হিরণ্য-গর্ভের—সভী জীবোঁ কে; **আত্মা**—পরমাত্মা; **গর্ভ-উদক-শায়ী**—গর্ভোদকশায়ী

विष्णु; **व्यष्टि**—व्यक्तिगत; **जीव**—जीव; **अन्तः-यामी**—परमात्मा; **क्षीर-उदक-शायी**—क्षीरोदकशायी विष्णु।

अनुवाद

"गर्भोदकशायी विष्णु सारे जीव-समुदाय के परमात्मा हैं और क्षीरोदकशायी विष्णु हर व्यक्तिगत जीव के परमात्मा हैं।

এ সভার দর্শনেতে আছে মায়া-গন্ধ ।
তুরীয় কৃষ্ণের নাহি মায়ার সম্বন্ধ ॥৫২॥

ए सभार दर्शनेते आछे माया-गन्ध ।
तुरीय कृष्णेर नाहि मायार सम्बन्ध ॥५२॥

ए—यह; **सभार**—सभा के; **दर्शनेते**—देखने में; **आछे**—है; **माया-गन्ध**—माया से सम्बन्ध; **तुरीय**—चौथा; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **नाहि**—नहीं है; **मायार**—भौतिक शक्ति का; **सम्बन्ध**—सम्बन्ध।

अनुवाद

"ऊपर से हमें दिखता है कि इन पुरुषों का सम्बन्ध माया से है, किन्तु इनके ऊपर, चतुर्थ आयाम में भगवान् कृष्ण हैं, जिनका भौतिक शक्ति (माया) से कोई सम्पर्क नहीं होता।

तात्पर्य

कारणोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु—इन तीनों पुरुषों का सम्बन्ध भौतिक शक्ति माया से है, क्योंकि माया द्वारा ही ये भौतिक जगतों की सृष्टि करते हैं। ये तीनों पुरुष, जो कि क्रमशः कारण, गर्भ तथा क्षीर सागरों में शयन करते हैं, प्रत्येक वस्तु के परमात्मा हैं। कारणोदकशायी विष्णु सामूहिक ब्रह्माण्डों के परमात्मा हैं, गर्भोदकशायी विष्णु सामूहिक जीवों के और क्षीरोदकशायी विष्णु प्रत्येक व्यक्तिगत जीव के परमात्मा हैं। ये सभी भौतिक शक्ति के कार्यों के प्रति किसी न किसी रूप में आकृष्ट रहते हैं, इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि इनमें माया के प्रति कुछ स्नेह है। किन्तु स्वयं श्रीकृष्ण की अपनी दिव्य स्थिति माया से तनिक भी रंजित नहीं है। उनकी दिव्य अवस्था *तुरीय* अर्थात् चतुर्थ आयाम की अवस्था कहलाती है।

विराड् हिरण्य-गर्भश्च कारणं चेत्युपाधयः ।
ईशस्य यत्त्रिभिर्हीनं तुरीयं तत्प्रचक्षते ॥५३॥

विराड् हिरण्य-गर्भश्च कारणं चेत्युपाधयः ।
ईशस्य यत्त्रिभिर्हीनं तुरीयं तत्प्रचक्षते ॥५३॥

विराट्—विराट् सृष्टि; **हिरण्य-गर्भः**—हिरण्य गर्भ सृष्टि; **च**—और; **कारणम्**—कारण सृष्टि; **च**—तथा; **इति**—इस प्रकार; **उपाधयः**—विशिष्ट उपाधियाँ; **ईशस्य**—भगवान् की; **यत्**—वह जो; **त्रिभिः**—ये तीन; **हीनम्**—बिना; **तुरीयम्**—चौथी; **तत्**—वह; **प्रचक्षते**—मानी जाती है।

अनुवाद

"'भौतिक जगत् में भगवान् की उपाधियाँ विराट्, हिरण्यगर्भ तथा कारण हैं। किन्तु वे इन तीन उपाधियों से परे अन्ततोगत्वा चतुर्थ आयाम (तुरीय) में रहते हैं।"

तात्पर्य

परम पूर्ण का घटनामय प्राकट्य (*विराट्*), हर वस्तु के तात्त्विक आत्मा (*हिरण्यगर्भ*) तथा कारण (*कारण* या कारण-प्रकृति)—ये उन पुरुषों की उपाधियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं, जो भौतिक सृष्टि के लिए उत्तरदायी हैं। दिव्य स्थिति इन उपाधियों से परे है, अतएव वह चतुर्थ आयाम की स्थिति कहलाती है। यह *श्रीमद्भागवत* के एक श्लोक (११.१५.१६) पर श्रीधर स्वामी द्वारा की गई टीका से लिया गया है।

यद्यपि तिनेर माया लइया व्यवहार ।
तथापि तत्स्पर्श नाहि, सभे माया-पार ॥५४॥

यद्यपि तिनेर माया लइया व्यवहार ।
तथापि तत्स्पर्श नाहि, सभे माया-पार ॥५४॥

यद्यपि—यद्यपि; **तिनेर**—इन तीन की; **माया**—भौतिक शक्ति; **लइया**—लेकर; **व्यवहार**—व्यवहार; **तथापि**—तथापि; **तत्**—उसका; **स्पर्श**—स्पर्श; **नाहि**—नहीं है; **सभे**—वे सभी; **माया-पार**—माया से परे।

अनुवाद

"यद्यपि भगवान् के ये तीनों स्वरूप भौतिक शक्ति से सीधे सम्बन्धित

हैं, लेकिन यह शक्ति इनमें से किसी का भी स्पर्श नहीं करती। ये सब माया से परे हैं।

एतदीशनमीशस्य प्रकृति-स्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदात्म-स्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥५५॥

एतदीशनमीशस्य प्रकृति-स्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदात्म-स्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥५५॥

एतत्—यह; **ईशनम्**—ऐश्वर्य; **ईशस्य**—भगवान् का; **प्रकृति-स्थः**—भौतिक प्रकृति में स्थित; **अपि**—यद्यपि; **तत्**—माया के; **गुणैः**—गुणों से; **न**—नहीं; **युज्यते**—प्रभावित नहीं होता है; **सदा**—सदा; **आत्म-स्थैः**—अपनी ही प्रकृति में स्थित; **यथा**—जैसे; **बुद्धिः**—बुद्धि; **तत्**—उनकी; **आश्रया**—जिसने आश्रय लिया है।

अनुवाद

"'यह भगवान् का ऐश्वर्य है : यद्यपि वे भौतिक प्रकृति में स्थित रहते हैं, फिर भी वे प्रकृति के गुणों से कभी भी प्रभावित नहीं होते। उसी प्रकार जो लोग उनकी शरण में जा चुके हैं और जिन्होंने अपनी बुद्धि उन पर स्थिर कर ली है, वे प्रकृति के गुणों से प्रभावित नहीं होते।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.११.३८) से लिया गया है। जिन लोगों ने भगवान् के चरणों में शरण ले ली है, वे भौतिक जगत् में रहते हुए भी उससे अपनी पहचान नहीं करते। शुद्ध भक्त भले ही भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से सम्बन्ध रखते हों, किन्तु कृष्णभावनामृत में अपनी दिव्य चेतना के कारण वे भौतिक गुणों से प्रभावित नहीं होते। ऐसे भक्तों को भौतिक कार्यकलापों का जादू आकर्षित नहीं कर पाता। अतएव भगवान् तथा उनके अधीन काम करने वाले उनके भक्त भौतिक कल्मष से सदैव मुक्त रहते हैं।

सेई तिन जनेर तुमि परम आश्रय ।
तुमि मूल नारायण—इथे कि संशय ॥५६॥

सेइ तिन जनेर तुमि परम आश्रय ।
तुमि मूल नारायण—इथे कि संशय ॥५६॥

सेइ—ये; **तिन**—तीन; **जनेर**—पूर्णांश की; **तुमि**—आप; **परम**—परम; **आश्रय**—आश्रय; **तुमि**—आप; **मूल**—आदि; **नारायण**—नारायण; **इथे**—इसमें; **कि**—क्या; **संशय**—संशय।

अनुवाद

"आप इन तीनों पुरुषावतारों के परम आश्रय हैं। इस तरह इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आप आदि नारायण हैं।

तात्पर्य

ब्रह्मा ने पुष्टि की है कि भगवान् कृष्ण परमेश्वर हैं एवं वे ही क्षीरोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा कारणोदकशायी विष्णु (महाविष्णु) नामक तीन पुरुषावतारों के स्रोत हैं। अपनी लीलाओं के लिए भगवान् कृष्ण के चार मूल प्राकट्य हैं—अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। प्रथम पुरुष अवतार जो कारण सागर में महाविष्णु हैं और समग्र भौतिक शक्ति के स्रष्टा हैं, वे संकर्षण के विस्तार हैं। द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रद्युम्न के विस्तार हैं और तृतीय पुरुष क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो अनिरुद्ध के विस्तार हैं। ये सभी उन नारायण के ही प्राकट्यों (प्रकाश) की कोटि में आते हैं, जो श्रीकृष्ण के प्रकाश हैं।

সেই তিনের অংশী পরব্যোম-নারায়ণ ।
তেঁহ তোমার বিলাস, তুমি মূল-নারায়ণ ॥৫৭॥

सेइ तिनेर अंशी परव्योम-नारायण ।
तेंह तोमार विलास, तुमि मूल-नारायण ॥५७॥

सेइ—ये; **तिनेर**—तीनों के; **अंशी**—स्रोत, उद्गम; **पर-व्योम**—पर व्योम में; **नारायण**—भगवान् नारायण; **तेंह**—वे; **तोमार**—आपकी; **विलास**—लीला-विस्तार; **तुमि**—आप; **मूल**—मूल; **नारायण**—नारायण।

अनुवाद

"इन तीनों स्वरूपों के स्रोत आध्यात्मिक आकाश (परव्योम) में स्थित नारायण हैं। वे आपके विलास-विस्तार हैं। अतएव आप परम नारायण हैं।"

অতএব ব্রহ্ম-বাক্যে——পরব্যোম-নারায়ণ ।
তেঁহো কৃষ্ণের বিলাস——এই তত্ত্ব-বিবরণ ॥৫৮॥

অতএব ব্রহ্ম-বাক্যে——পরব্যোম-নারায়ণ ।
তেঁহো কৃষ্ণের বিলাস——এই তত্ত্ব-বিবরণ ॥৫৮॥

অতএব—अतएव; **ব্রহ্ম**—ब्रह्माजी का; **বাক্যে**—कथन में; **পর-ব্যোম**—परव्योम में; **নারায়ণ**—भगवान् नारायण; **তেঁহো**—वे; **কৃষ্ণের**—भगवान् कृष्ण के; **বিলাস**—लीला अवतार; **এই**—यह; **তত্ত্ব**—सत्य का; **বিবরণ**—वर्णन।

अनुवाद

अतएव ब्रह्मा के वचनों के अनुसार दिव्य जगत् के अधिष्ठाता-विग्रह नारायण कृष्ण के विलास-विस्तार हैं। अब यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका है।

এই শ্লোক তত্ত্ব-লক্ষণ ভাগবত-সার ।
পরিভাষা-রূপে ইহার সর্বত্রাধিকার ॥৫৯॥

এই শ্লোক তত্ত্ব-লক্ষণ ভাগবত-সার ।
পরিভাষা-রূপে ইহার সর্বত্রাধিকার ॥৫৯॥

এই—यह; **শ্লোক**—श्लोक; **তত্ত্ব**—सत्य, तत्त्व; **লক্ষণ**—लक्षण करते हुए; **ভাগবত**—*श्रीमद्भागवतम्* के; **সার**—सार; **পরিভাষা**—पर्यायों द्वारा; **রূপে**—रूप में; **ইহার**—इस (*श्रीमद्भागवतम्*) का; **সর্বত্র**—हर जगह, सर्वत्र; **অধিকার**—अधिकार-क्षेत्र।

अनुवाद

इस श्लोक (श्लोक ३०) में सूचित सत्य *श्रीमद्भागवत* का सार है। यह निर्णय पर्यायों के माध्यम से सर्वत्र लागू होता है।

ব্রহ্ম, আত্মা, ভগবান্——কৃষ্ণের বিহার ।
এ অর্থ না জানি' মূর্খ অর্থ করে আর ॥৬০॥

ব্রহ্ম, আত্মা, ভগবান্——কৃষ্ণের বিহার ।
এ অর্থ না জানি' মূর্খ অর্থ করে আর ॥৬০॥

ব্রহ্ম—निर्विशेष ब्रह्म; **আত্মা**—परमात्मा; **ভগবান্**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **কৃষ্ণের**—

भगवान् कृष्ण का; **विहार**—प्राकट्य; **ए**—यह; **अर्थ**—अर्थ; **ना**—नहीं; **जानि'**—जानकर; **मूर्ख**—मूर्ख लोग; **अर्थ**—अर्थ; **करे**—करते हैं; **आर**—अन्य।

अनुवाद

मूर्ख विद्वान नहीं जानते कि ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् सभी श्रीकृष्ण के पहलू हैं, अतएव वे तरह-तरह से तर्कवितर्क करते हैं।

अवतारी नारायण, कृष्ण अवतार ।
तेँह चतुर्भुज, ईँह मनुष्य-आकार ॥ ६१ ॥

अवतारी नारायण, कृष्ण अवतार ।
तेंह चतुर्भुज, इँह मनुष्य-आकार ॥ ६१ ॥

अवतारी—अवतारों के स्रोत; **नारायण**—भगवान् नारायण; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **अवतार**—अवतार; **तेंह**—वे; **चतुः-भुज**—चतुर्भुज; **इँह**—यह; **मनुष्य**—मनुष्य की भाँति; **आकार**—रूप।

अनुवाद

चूँकि नारायण के चार हाथ हैं, जबकि कृष्ण मनुष्य की तरह दिखते हैं, अतएव उनका कहना है कि नारायण तो मूल ईश्वर हैं, जबकि कृष्ण अवतार मात्र हैं।

तात्पर्य

कुछ पंडितों का तर्क है कि नारायण मूल भगवान् हैं और कृष्ण उनके अवतार हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण के केवल दो हाथ होते हैं, जबकि नारायण के चार हाथ होते हैं। ऐसे मूर्ख पंडित परम तत्त्व के स्वरूप को नहीं समझते।

एइ-मते नाना-रूप करे पूर्व-पक्ष ।
ताहारे निर्जिते भागवत-पद्य दक्ष ॥ ६२ ॥

एइ-मते नाना-रूप करे पूर्व-पक्ष ।
ताहारे निर्जिते भागवत-पद्य दक्ष ॥ ६२ ॥

एइ-मते—इसलिए; **नाना**—अनेक; **रूप**—रूप; **करे**—करते हैं; **पूर्व-पक्ष**—आपत्ति, विरोध; **ताहारे**—उनको; **निर्जिते**—पराजित करते हैं; **भागवत**—*श्रीमद्भागवतम्* का; **पद्य**—पद्य; **दक्ष**—निपुण।

अनुवाद

इस प्रकार उनके तर्क नाना रूपों में प्रकट होते हैं, किन्तु भागवत काव्य इन सबका बड़ी ही दक्षता से खंडन करता है।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ६३ ॥

वदन्ति—वे कहते हैं; **तत्**—वह; **तत्त्व-विदः**—विद्वान जन; **तत्त्वम्**—परम सत्य; **यत्**—जो; **ज्ञानम्**—ज्ञान; **अद्वयम्**—अद्वय; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **इति**—इस प्रकार; **परमात्मा**—परमात्मा; **इति**—इस प्रकार; **भगवान्**—भगवान्; **इति**—इस तरह; **शब्द्यते**—जाना जाता है।

अनुवाद

"परम सत्य को जानने वाले विद्वान अध्यात्मवादी कहते हैं कि यह अद्वय ज्ञान है और यही निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) से लिया गया गया है।

शुन भाई एई श्लोक करह विचार ।
एक मुख्य-तत्त्व, तिन ताहार प्रचार ॥ ६४ ॥

शुन भाइ एइ श्लोक करह विचार ।
एक मुख्य-तत्त्व, तिन ताहार प्रचार ॥ ६४ ॥

शुन—कृपया सुनो; **भाइ**—भाइयों; **एइ**—इसे; **श्लोक**—श्लोक; **करह**—कृपया करो; **विचार**—विचार; **एक**—एक; **मुख्य**—प्रमुख; **तत्त्व**—तत्त्व; **तिन**—तीन; **ताहार**—उसका; **प्रचार**—प्राकट्य।

अनुवाद

मेरे भाइयों, कृपा करके इस श्लोक की व्याख्या को सुनो और इसके अर्थ पर विचार करो : एक मूल तत्त्व अपने तीन विभिन्न पहलूओं में जाना जाता है।

অদ্বয়-জ্ঞান তত্ত্ব-বস্তু কৃষ্ণের স্বরূপ ।
ব্রহ্ম, আত্মা, ভগবান্—তিন তাঁর রূপ ॥ ৬৫ ॥

अद्वय-ज्ञान तत्त्व-वस्तु कृष्णेर स्वरूप ।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—तिन ताँर रूप ॥ ६५ ॥

अद्वय-ज्ञान—अद्वय ज्ञान; **तत्त्व-वस्तु**—परम सत्य; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **स्वरूप**—स्वरूप; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **आत्मा**—परमात्मा; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **तिन**—तीन; **ताँर**—उनके; **रूप**—रूप।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण स्वयं परम अद्वय सत्य हैं, आखरी वास्तविकता हैं। वे अपने आपको ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्—इन तीन पहलूओं में प्रकट करते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत से लिये गये इस श्लोक (१.२.११) में मुख्य शब्द *भगवान्* साकार परमेश्वर का सूचक है तथा ब्रह्म एवं परमात्मा परम पुरुष के सहगामी विस्तार हैं, जिस तरह सरकार तथा उसके मंत्री सर्वोपरि राजा के अधीन होते हैं। दूसरे शब्दों में, मुख्य सत्य तीन विभिन्न अवस्थाओं में प्रकट होता है। परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्म तथा परमात्मा रूप में भी विख्यात हैं, यद्यपि ये सारे पहलू एक (अभिन्न) हैं।

এই শ্লোকের অর্থে তুমি হৈলা নির্বচন ।
আর এক শুন ভাগবতের বচন ॥ ৬৬ ॥

एइ श्लोकेर अर्थे तुमि हैला निर्वचन ।
आर एक शुन भागवतेर वचन ॥ ६६ ॥

एइ—यह; **श्लोकेर**—श्लोक के; **अर्थे**—अर्थ से; **तुमि**—आप; **हैला**—हो गये हैं; **निर्वचन**—अवाक्; **आर**—अन्य; **एक**—एक; **शुन**—कृपया सुनो; **भागवतेर**—*श्रीमद्भागवत* का; **वचन**—वचन, कथन।

अनुवाद

इस श्लोक के तात्पर्य ने तुम्हें तर्क करने से रोक दिया है। अब तुम *श्रीमद्भागवत* का अन्य श्लोक सुनो।

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।
इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥ ६७॥

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णास्तु भगवान्स्वयम् ।
इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥ ६७॥

एते—ये; **च**—तथा; **अंश**—पूर्ण अंश; **कलाः**—पूर्णांश के अंश (कला); **पुंसः**—पुरुष अवतारों के; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **तु**—किन्तु; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **स्वयम्**—स्वयं; **इन्द्र-अरि**—इन्द्र के शत्रु; **व्याकुलम्**—से पूर्ण; **लोकम्**—विश्व; **मृडयन्ति**—प्रसन्न करते हैं; **युगे युगे**—प्रत्येक युग में ठीक समय पर।

अनुवाद

"परमेश्वर के ये सारे अवतार या तो पुरुष अवतारों के अंश हैं या अंशों के अंश (कला) हैं। लेकिन कृष्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। प्रत्येक युग में, जब जब इन्द्र के शत्रु संसार को विचलित करते हैं, तब तब वे अपने विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से जगत् की रक्षा करते हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१.३.२८) का यह श्लोक निश्चित रूप से इस धारणा का निषेध करता है कि श्रीकृष्ण विष्णु या नारायण के अवतार हैं। भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् एवं समस्त कारणों के सर्वोपरि कारण हैं। यह श्लोक स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि भगवान् के विभिन्न अवतार—यथा श्री राम, नृसिंह तथा वराह—निस्सन्देह, विष्णु-तत्त्व हैं, किन्तु वे सबके सब या तो मूल भगवान् श्रीकृष्ण के अंश हैं या उनके अंशों के अंश (कला) हैं।

सब अवतारेर करि सामान्य-लक्षण ।
तार मध्ये कृष्ण-चन्द्रेर करिल गणन ॥ ६८॥

सब अवतारेर करि सामान्य-लक्षण ।
तार मध्ये कृष्ण-चन्द्रेर करिल गणन ॥ ६८॥

सब—सब; **अवतारेर**—अवतारों के; **करि**—बनाने; **सामान्य**—सामान्य; **लक्षण**—लक्षण; **तार**—उनके; **मध्ये**—मध्य में; **कृष्ण-चन्द्रेर**—भगवान् श्रीकृष्ण की; **करिल**—किया; **गणन**—गणना।

अनुवाद

भागवत सामान्य रीति से अवतारों के लक्षणों तथा कार्यों का वर्णन करता है और इन्हीं में श्रीकृष्ण की गणना करता है।

तबे सूत गोसाञि मने पाञा बड़ भय ।
यार ये लक्षण ताहा करिल निश्चय ॥ ६९ ॥

तबे सूत गोसाञि मने पाञा बड़ भय ।
यार ये लक्षण ताहा करिल निश्चय ॥ ६९ ॥

तबे—तब; **सूत गोसाञि**—सूत गोस्वामी; **मने**—मन में; **पाञा**—पाना; **बड़**—बड़ा; **भय**—भय; **यार**—जिनका; **ये**—जिन; **लक्षण**—लक्षण; **ताहा**—वह; **करिल**—उन्होंने बताया; **निश्चय**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

इससे सूत गोस्वामी अत्यधिक आशंकित हो उठे और उन्होंने प्रत्येक अवतार को उनके विशिष्ट लक्षणों से विभेदित किया।

अवतार सब——पुरुषेर कला, अंश ।
स्वयं-भगवान्कृष्ण सर्व-अवतंस ॥ ७० ॥

अवतार सब——पुरुषेर कला, अंश ।
स्वयं-भगवान्कृष्ण सर्व-अवतंस ॥ ७० ॥

अवतार—अवतार; **सब**—सब; **पुरुषेर**—पुरुष अवतारों के; **कला**—पूर्णांश के अंश; **अंश**—पूर्ण अंश; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **सर्व**—सबके; **अवतंस**—शिखर।

अनुवाद

ईश्वर के सारे अवतार या तो पुरुष अवतारों के पूर्ण अंश या पूर्ण अंश के अंश (कला) हैं, किन्तु आदि भगवान् तो श्रीकृष्ण ही हैं। वे समस्त अवतारों के स्त्रोत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

पूर्व-पक्ष कहे——तोमार भाल त' व्याख्यान ।
परव्योम-नारायण स्वयं-भगवान् ॥ ७१ ॥

पूर्व-पक्ष कहे—तोमार भाल त' व्याख्यान ।
परव्योम-नारायण स्वयं-भगवान् ॥ ७१ ॥

पूर्व-पक्ष—विरोधी पक्ष; **कहे**—कहता है; **तोमार**—तुम्हारा; **भाल**—अच्छा; **त'**—निश्चित ही; **व्याख्यान**—व्याख्यान; **पर-व्योम**—पर व्योम में स्थित; **नारायण**—भगवान् नारायण; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—भगवान्।

अनुवाद

एक विपक्षी कह सकता है, "यह तो तुम्हारी व्याख्या है, किन्तु वास्तव में परम भगवान् तो नारायण हैं, जो दिव्य लोक में स्थित हैं।

তেঁহ আসি' কৃষ্ণ-রূপে করেন অবতার ।
এই অর্থ শ্লোকে দেখি কি আর বিচার ॥ ৭২ ॥
तेंह आसि' कृष्ण-रूपे करेन अवतार ।
एइ अर्थ श्लोके देखि कि आर विचार ॥ ७२ ॥

तेंह—वे (नारायण); **आसि'**—आते हैं; **कृष्ण-रूपे**—कृष्ण-रूप में; **करेन**—करते हैं; **अवतार**—अवतार; **एइ**—यह; **अर्थ**—अर्थ; **श्लोके**—इस श्लोक में; **देखि**—मैं देखता हूँ; **कि**—क्या; **आर**—और; **विचार**—विचार।

अनुवाद

"वे (नारायण) भगवान् कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। मेरी दृष्टि में यही इस श्लोक का अर्थ है। अब और आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है।"

তারে কহে—কেনে কর কুতর্কানুমান ।
শাস্ত্র-বিরুদ্ধার্থ কভু না হয় প্রমাণ ॥ ৭৩ ॥
तारे कहे—केने कर कुतर्कानुमान ।
शास्त्र-विरुद्धार्थ कभु ना हय प्रमाण ॥ ७३ ॥

तारे—उसको; **कहे**—कहता है; **केने**—क्यों; **कर**—तुम करते हो; **कु-तर्क**—कुतर्क; **अनुमान**—अनुमान; **शास्त्र-विरुद्ध**—शास्त्रों के विपरीत; **अर्थ**—अर्थ; **कभु**—किसी समय; **ना**—नहीं; **हय**—है; **प्रमाण**—प्रमाण।

अनुवाद

हम ऐसे भ्रान्त व्याख्याकार को इस प्रकार उत्तर दे सकते हैं, "तुम ऐसा कुतर्क क्यों प्रस्तुत करते हो? जो व्याख्या शास्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध होती है, वह कभी भी साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं की जाती।

অনুবাদমনুক্ত্বা তু ন বিধেয়মুদীরয়েৎ ।
ন হ্যলব্ধাস্পদং কিঞ্চিৎকুত্রচিৎপ্রতিতিষ্ঠতি ॥৭৪॥

अनुवादमनुक्त्वा तु न विधेयमुदीरयेत् ।
न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित्कुत्रचित्प्रतितिष्ठति ॥ ७४ ॥

अनुवादम्—विषय; **अनुक्त्वा**—न कहकर; **तु**—किन्तु; **न**—नहीं; **विधेयम्**—विधेय; **उदीरयेत्**—बोलना चाहिए; **न**—नहीं; **हि**—निश्चय ही; **अलब्ध-आस्पदम्**—निश्चित स्थिति के बिना; **किञ्चित्**—कुछ; **कुत्रचित्**—कहीं; **प्रतितिष्ठति**—टिकता है।

अनुवाद

कर्ता के पूर्व उसकी निर्दिष्ट बात (विधेय) का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि समुचित आधार के बिना वह खड़ा नहीं रह सकता।

तात्पर्य

यह अलंकार नियम *एकादशी-तत्त्व* के तेरहवें स्कन्ध में शब्दों के आलंकारिक प्रयोग के सम्बन्ध में आया है। अज्ञात कर्म (विधेय) को ज्ञात कर्ता (उद्देश्य) के पहले नहीं रखना चाहिए, क्योंकि यदि कर्ता पहले नहीं रखा जाता, तो कर्म (विधेय) का कोई अर्थ नहीं निकलता।

অনুবাদ না কহিয়া না কহি বিধেয় ।
আগে অনুবাদ কহি, পশ্চাদ্বিধেয় ॥৭৫॥

अनुवाद ना कहिया ना कहि विधेय ।
आगे अनुवाद कहि, पश्चाद्विधेय ॥ ७५ ॥

अनुवाद—विषय; **ना कहिया**—कहे बिना; **ना**—नहीं; **कहि**—मैं कहता हूँ; **विधेय**—विधेय; **आगे**—पहले; **अनुवाद**—विषय; **कहि**—मैं कहता हूँ; **पश्चात्**—बाद में; **विधेय**—विधेय।

अनुवाद

"यदि मैं उद्देश्य (कर्ता) का उल्लेख न करूँ, तो मैं विधेय का उल्लेख नहीं करता हूँ। अतएव पहले मैं उद्देश्य का उल्लेख करूँगा और तब विधेय का।

'বিধেয়' কহিয়ে তারে, যে বস্তু অজ্ঞাত ।
'অনুবাদ' কহি তারে, যেই হয় জ্ঞাত ॥৭৬॥

'विधेय' कहिये तारे, ग्ने वस्तु अज्ञात ।
'अनुवाद' कहि तारे, ग्नेइ हय ज्ञात ॥ ७६ ॥

विधेय—विधेय; **कहिये**—मैं कहता हूँ; **तारे**—उसको; **ग्ने**—जो; **वस्तु**—वस्तु; **अज्ञात**—अज्ञात; **अनुवाद**—विषय; **कहि**—मैं कहता हूँ; **तारे**—उसको; **ग्नेइ**—जो; **हय**—है; **ज्ञात**—ज्ञात।

अनुवाद

"किसी वाक्य का विधेय वह है, जो पाठक को अज्ञात होता है, जबकि उद्देश्य (कर्ता) वह है, जो उसे ज्ञात रहता है।

যৈছে কহি,—এই বিপ্র পরম পণ্ডিত ।
বিপ্র—অনুবাদ, ইহার বিধেয়—পাণ্ডিত্য ॥৭৭॥

ग्नैछे कहि,—एइ विप्र परम पण्डित ।
विप्र—अनुवाद, इहार विधेय—पाण्डित्य ॥ ७७ ॥

ग्नैछे—जैसे; **कहि**—मैं कहता हूँ; **एइ**—यह; **विप्र**—ब्राह्मण; **परम**—परम; **पण्डित**—विद्वान; **विप्र**—ब्राह्मण; **अनुवाद**—विषय; **इहार**—इसका; **विधेय**—विधेय; **पाण्डित्य**—ज्ञान, विद्वत्ता।

अनुवाद

"उदाहरणार्थ, हम कह सकते हैं, 'यह विप्र महान् पण्डित है।' इस वाक्य में विप्र उद्देश्य है और उसका पाण्डित्य विधेय है।

বিপ্রত্ব বিখ্যাত তার পাণ্ডিত্য অজ্ঞাত ।
অতএব বিপ্র আগে, পাণ্ডিত্য পশ্চাত ॥৭৮॥

विप्रत्व विख्यात तार पाण्डित्य अज्ञात ।
अतएव विप्र आगे, पाण्डित्य पश्चात ॥ ७८ ॥

विप्रत्व—विप्र होने का गुण; **विख्यात**—विख्यात; **तार**—उसकी; **पाण्डित्य**—विद्वत्ता; **अज्ञात**—अज्ञात; **अतएव**—अतएव; **विप्र**—विप्र शब्द; **आगे**—पहले; **पाण्डित्य**—ज्ञान, विद्वत्ता; **पश्चात**—बाद में।

अनुवाद

"मनुष्य का विप्र होना ज्ञात है, किन्तु उसका पाण्डित्य अज्ञात है। अतएव व्यक्ति की पहचान पहले की जाती है और उसके पाण्डित्य की बाद में।

तैछे ईँह अवतार सब हैल ज्ञात ।
कार अवतार?—एइ वस्तु अविज्ञात ॥ ७९ ॥

तैछे—उसी प्रकार; **इँह**—ये; **अवतार**—अवतार; **सब**—सब; **हैल**—थे; **ज्ञात**—ज्ञात; **कार**—जिनके; **अवतार**—अवतार; **एइ**—यह; **वस्तु**—वस्तु; **अविज्ञात**—अज्ञात।

अनुवाद

"इसी प्रकार, ये सारे अवतार ज्ञात थे, किन्तु ये किनके अवतार थे, यह ज्ञात न था।

'एते'-शब्दे अवतारेर आगे अनुवाद ।
'पुरुषेर अंश' पाछे विधेय-संवाद ॥ ८० ॥

एते-शब्दे—एते (ये) शब्द में; **अवतारेर**—अवतारों के; **आगे**—पहले; **अनुवाद**—विषय; **पुरुषेर**—पुरुष अवतारों का; **अंश**—पूर्णांश; **पाछे**—बाद में; **विधेय**—विधेय के; **संवाद**—सन्देश।

अनुवाद

"पहले 'एते' (ये) शब्द से उद्देश्य (अवतार) की स्थापना होती है। तत्पश्चात् 'पुरुषावतारों के पूर्ण अंश' विधेय के रूप में आये हैं।

तैछे कृष्ण अवतार-भितरे हैल ज्ञात ।
ताँहार विशेष-ज्ञान सेइ अविज्ञात ॥ ८१ ॥

तैछे कृष्ण अवतार-भितरे हैल ज्ञात ।
ताँहार विशेष-ज्ञान सेइ अविज्ञात ॥ ८१ ॥

तैछे—उसी प्रकार; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **अवतार-भितरे**—अवतारों में से; **हैल**—थे; **ज्ञात**—ज्ञात; **ताँहार**—उनका; **विशेष-ज्ञान**—विशेष ज्ञान; **सेइ**—वह; **अविज्ञात**—अज्ञात।

अनुवाद

"इसी प्रकार से, जब पहले कृष्ण की गणना अवतारों में हो चुकी, तो भी उनके विषय में विशिष्ट ज्ञान अज्ञात था।

अतएव 'कृष्ण'-शब्द आगे अनुवाद ।
'स्वयं-भगवत्ता' पिछे विधेय-संवाद ॥ ८२ ॥

अतएव 'कृष्ण'-शब्द आगे अनुवाद ।
'स्वयं-भगवत्ता' पिछे विधेय-संवाद ॥ ८२ ॥

अतएव—अतएव; **कृष्ण-शब्द**—कृष्ण शब्द; **आगे**—पहला; **अनुवाद**—विषय; **स्वयम्-भगवत्ता**—स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **पिछे**—बाद में; **विधेय**—विधेय में; **संवाद**—सन्देश।

अनुवाद

"अतएव सबसे पहले 'कृष्ण' शब्द उद्देश्य के रूप में आता है, जिसके बाद विधेय आता है, जो उनके आदि भगवान् रूप को बतलाने वाला है।

कृष्णेर स्वयं-भगवत्ता—इहा हैल साध्य ।
स्वयं-भगवानेर कृष्णत्व हैल बाध्य ॥ ८३ ॥

कृष्णेर स्वयं-भगवत्ता—इहा हैल साध्य ।
स्वयं-भगवानेर कृष्णत्व हैल बाध्य ॥ ८३ ॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण का; **स्वयम्-भगवत्ता**—स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होना; **इहा**—यह; **हैल**—था; **साध्य**—साध्य करना था; **स्वयम्-भगवानेर**—भगवान् का; **कृष्णत्व**—भगवान् कृष्ण होना; **हैल**—था; **बाध्य**—अनिवार्य।

अनुवाद

"इससे यह प्रमाणित होता है कि श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं। इसलिए आदि भगवान् अनिवार्य रूप से कृष्ण ही हैं।

कृष्ण यदि अंश हैत, अंशी नारायण ।
तबे विपरीत हैत सूतेर बचन ॥ ८४॥

कृष्ण ग्रदि अंश हैत, अंशी नारायण ।
तबे विपरीत हैत सूतेर वचन ॥ ८४॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **ग्रदि**—यदि; **अंश**—पूर्ण अंश; **हैत**—होते; **अंशी**—सभी अंशों के स्रोत; **नारायण**—भगवान् नारायण; **तबे**—तब; **विपरीत**—विपरीत; **हैत**—होता; **सूतेर**—सूत गोस्वामी का; **वचन**—कथन।

अनुवाद

"यदि कृष्ण पूर्ण अंश होते और नारायण आदि भगवान् (अंशी), तो सूत गोस्वामी का कथन विपरीत हो जाता।

नारायण अंशी येई स्वयं-भगवान् ।
तेँह श्री-कृष्ण—ऐछे करित व्याख्यान ॥ ८५॥

नारायण अंशी ग्रेइ स्वयं-भगवान् ।
तेंह श्री-कृष्ण—ऐछे करित व्याख्यान ॥ ८५॥

नारायण—भगवान् नारायण; **अंशी**—सभी अवतारों का स्रोत; **ग्रेइ**—जो; **स्वयम्-भगवान्**—स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **तेंह**—वे; **श्री-कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **ऐछे**—इस तरह; **करित**—किया होता; **व्याख्यान**—व्याख्यान।

अनुवाद

"तब वे यह कहते, 'समस्त अवतारों के उद्गम नारायण मूल भगवान् हैं और वे श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए।'

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव ।
आर्ष-विज्ञ-वाक्ये नाहि दोष एई सब ॥ ८६॥

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव ।
आर्ष-विज्ञ-वाक्ये नाहि दोष एइ सब ॥ ८६ ॥

भ्रम—गलती; **प्रमाद**—भ्रम; **विप्रलिप्सा**—धोखेबाजी; **करण-अपाटव**—इन्द्रियों की अपूर्णता; **आर्ष**—प्रामाणिक सन्तों का; **विज्ञ-वाक्ये**—विवेकपूर्ण शब्दों में; **नाहि**—नहीं; **दोष**—दोष; **एइ**—ये; **सब**—सब।

अनुवाद

"प्रामाणिक ऋषियों के वचनों में त्रुटियाँ, मोह, ठगने की प्रवृत्ति तथा भ्रान्त अनुभूति (इन्द्रियों की अपूर्णता) नहीं होतीं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में अवतारों, पुरुष के पूर्ण अंशों की सूची दी गई है, जिसमें भगवान् कृष्ण का नाम भी है। लेकिन *भागवत* में आगे बतलाया गया है कि कृष्ण का विशिष्ट पद पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में है। चूँकि कृष्ण आदि भगवान् हैं, अतएव तर्क एवं विवेक से पुष्टि होती है कि उनका पद सदैव सर्वोच्च है।

यदि कृष्ण नारायण के पूर्ण विस्तार होते, तो मूल श्लोक अलग ढंग से रचा गया होता। तब निश्चय ही, इसका क्रम उलट दिया गया होता। किन्तु मुक्त ऋषियों के वचनों में त्रुटियाँ, मोह, छलछद्म या अपूर्ण अनुभूति नहीं हो सकती। अतएव इस कथन में कोई त्रुटि नहीं है कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। *श्रीमद्भागवत* के सारे संस्कृत कथन दिव्य ध्वनियाँ हैं। श्रील व्यासदेव ने पूर्ण साक्षात्कार के बाद इन कथनों को व्यक्त किया है; अतएव ये पूर्ण हैं, क्योंकि व्यासदेव जैसे मुक्त ऋषिगण कभी भी अलंकार-व्यवस्था में कोई त्रुटि नहीं करते। जब तक मनुष्य इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता, तब तक शास्त्रों से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा व्यर्थ है।

भ्रम का अर्थ है मिथ्या ज्ञान या त्रुटियाँ—यथा रज्जु को सर्प या किसी सीप को सोना मान लेना। ध्यान न देना या सच्चाई को गलत समझना *प्रमाद* है। *विप्रलिप्सा* ठगने की प्रवृत्ति है। *करणापाटव* भौतिक इन्द्रियों की अपूर्णता का सूचक है। ऐसी अपूर्णताओं के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जो वस्तु बहुत दूरी पर है या अत्यन्त लघु होती है, उसे आँखें नहीं देख पातीं। यहाँ तक

कि मनुष्य अपनी आँख की पलक को नहीं देख पाता, जो उसकी आँख के निकटतम है और यदि उसे पीलिया जैसा रोग हो जाये, तो उसे हर वस्तु पीली दिखाई देती हैं। इसी प्रकार कान दूर की आवाज नहीं सुन सकते। चूँकि भगवान्, उनके पूर्ण अंश तथा स्वरूपसिद्ध भक्त दिव्य पद पर स्थित रहते हैं, अतएव वे ऐसे अभावों से दिग्भ्रमित नहीं होते।

विरुद्धार्थ कह तुमि, कहिते कर रोष ।
तोमार अर्थे अविमृष्ट-विधेयांश-दोष ॥ ८७॥

विरुद्धार्थ कह तुमि, कहिते कर रोष ।
तोमार अर्थे अविमृष्ट-विधेयांश-दोष ॥ ८७॥

विरुद्ध-अर्थ—विपरीत अर्थ; **कह**—कहते हो; **तुमि**—आप; **कहिते**—संकेत करते हुए; **कर**—आप करते हैं; **रोष**—क्रोध; **तोमार**—तुम्हारा; **अर्थे**—अर्थ में; **अविमृष्ट-विधेय-अंश**—बिना विचार का विधेय-भाग; **दोष**—दोष।

अनुवाद

"तुम विरुद्ध बात कहते हो और जब इसकी ओर इंगित किया जाता है, तो तुम क्रोधित होते हो। तुम्हारी व्याख्या में स्थानभ्रष्ट विधेय का दोष है। यह अविचारणीय तालमेल है।

याँर भगवत्ता हैते अन्येर भगवत्ता ।
'स्वयं-भगवान्'-शब्देर ताहातेइ सत्ता ॥ ८८॥

याँर भगवत्ता हैते अन्येर भगवत्ता ।
'स्वयं-भगवान्'-शब्देर ताहातेइ सत्ता ॥ ८८॥

याँर—जिनका; **भगवत्ता**—भगवत्ता का गुण; **हैते**—से; **अन्येर**—अन्यों का; **भगवत्ता**—भगवत्ता का गुण; **स्वयम्-भगवान्-शब्देर**—स्वयं भगवान् शब्द का; **ताहातेइ**—उसमें; **सत्ता**—अस्तित्व।

अनुवाद

"केवल वे भगवान्, जो अन्य समस्त भगवत्ताओं के उद्गम हैं, स्वयं भगवान् या आदि भगवान् कहलाने के पात्र हैं।

दीप हैते यैछे बहु दीपेर ज्वलन ।
मूल एक दीप ताहा करिये गणन ॥ ८९॥

दीप हैते ग्रैछे बहु दीपेर ज्वलन ।
मूल एक दीप ताहा करिये गणन ॥ ८९॥

दीप—दीपक; **हैते**—से; **ग्रैछे**—जैसे; **बहु**—बहुत से; **दीपेर**—दीपकों का; **ज्वलन**—जलाना; **मूल**—मूल; **एक**—एक; **दीप**—दीपक; **ताहा**—वह; **करिये**—मैं करता हूँ; **गणन**—गणना

अनुवाद

"जब एक दीपक से अन्य अनेक दीपक जलाये जाते हैं, तो मैं उसे ही आदि (मूल) दीपक मानता हूँ।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (५.४६) में कहा गया है कि *विष्णुतत्त्व* या परम भगवत् तत्त्व दीपक की भाँति है, क्योंकि उनके विस्तार सभी प्रकार से मूल स्रोत के तुल्य होते हैं। एक जलता दीपक असंख्य अन्य दीपकों को जला सकता है, जो यद्यपि निकृष्ट नहीं हैं, तो भी उस एक दीपक को मूल माना जाना चाहिए, जिससे अन्य सभी दीपक जलाए गये हैं। इसी प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् *विष्णुतत्त्व* के पूर्ण अंशों में अपना विस्तार करते हैं और यद्यपि वे समान रूप से शक्तिशाली होते हैं, फिर भी मूल शक्तिशाली भगवान् ही उद्गम माने जाते हैं। यह दृष्टान्त शिवजी तथा ब्रह्माजी जैसे गुणावतारों के प्राकट्य की भी व्याख्या करता है। श्रील जीव गोस्वामी के मतानुसार—*शम्भोस्तु तमोऽधिष्ठानत्वात् कज्जलमयसूक्ष्मदीपशिखास्थानीयस्य न तथा साम्यम्*—"*शम्भुतत्त्व* कजली से ढके दीपक की भाँति है, क्योंकि शिवजी तमोगुण के प्रभारी हैं। ऐसे दीपक से बहुत कम प्रकाश आता है। अतएव शिवजी की शक्ति विष्णुतत्त्व की शक्ति की बराबरी नहीं कर सकती।"

तैछे सब अवतारेर कृष्ण से कारण ।
आर एक श्लोक शुन, कुव्याख्या-खण्डन ॥ ९० ॥

तैछे सब अवतारेर कृष्ण से कारण ।
आर एक श्लोक शुन, कुव्याख्या-खण्डन ॥ ९० ॥

तैछे—उसी प्रकार; **सब**—सब; **अवतारेर**—अवतारों के; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **से**—वे; **कारण**—कारण; **आर**—अन्य; **एक**—एक; **श्लोक**—श्लोक; **शुन**—कृपया सुनो; **कु-व्याख्या**—गलत व्याख्या; **खण्डन**—खण्डन।

अनुवाद

"इसी प्रकार से कृष्ण समस्त कारणों एवं समस्त अवतारों के कारण हैं। सारी भ्रान्त व्याख्याओं के खंडन हेतु अब दूसरा श्लोक सुनो।

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥९१॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥९२॥

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ ९१ ॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥ ९२ ॥

अत्र—*श्रीमद्भागवतम्* में; **सर्गः**—ब्रह्माण्ड के तत्त्वों की उत्पत्ति; **विसर्गः**—ब्रह्मा का सृजन; **च**—और; **स्थानम्**—सृष्टि का पालन; **पोषणम्**—भगवद्-भक्तों का पोषण; **ऊतयः**—कार्यकलाप के लिए प्रोत्साहन; **मनु-अन्तर**—मनुओं द्वारा नियत कर्तव्य; **ईश-अनुकथाः**—भगवान् के अवतारों का वर्णन; **निरोधः**—सृष्टि का समापन; **मुक्तिः**—मुक्ति; **आश्रयः**—परम आश्रय, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **दशमस्य**—दसवाँ (आश्रय); **विशुद्धि-अर्थम्**—पूर्ण ज्ञान के लिए; **नवानाम्**—नौ का; **इह**—यहाँ; **लक्षणम्**—लक्षण, प्रकृति; **वर्णयन्ति**—वर्णन करते हैं; **महा-आत्मानः**—महात्माजन; **श्रुतेन**—प्रार्थना से; **अर्थेन**—व्याख्या से; **च**—यथा; **अञ्जसा**—सीधा।

अनुवाद

"'इसमें (*श्रीमद्भागवत* में) दस विषयों का वर्णन किया गया है : (१) ब्रह्माण्ड के अवयवों की सृष्टि, (२) ब्रह्मा की सृष्टि, (३) सृष्टि का पालन, (४) श्रद्धावानों के प्रति विशिष्ट अनुग्रह, (५) कर्म के लिए प्रेरणाएँ, (६) नियमों का पालन करने वाले मनुष्यों के कर्तव्य, (७) भगवान् के अवतारों का वर्णन, (८) सृष्टि का संहार, (९) स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् से मुक्ति तथा (१०) परम आश्रय पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान्। दसवाँ विषय अन्य सबके आश्रय हैं। परम आश्रय और अन्य नौ विषयों में अन्तर दिखाने के लिए महाजनों ने प्रार्थनाओं या प्रत्यक्ष व्याख्याओं के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन नवों का वर्णन किया है।'

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत से लिये गये ये श्लोक (२.१०.१-२) उन दस विषयों की सूची देते हैं, जिनका वर्णन *भागवत* के मूल पाठ में हुआ है। इन सबमें दसवाँ सार (मूल विषय) है और अन्य नौ इसी सार से निकले हुए पद हैं। ये दसों विषय इस प्रकार हैं :

(१) *सर्ग*—विष्णु द्वारा की गई प्राथमिक सृष्टि, पाँच स्थूल तत्त्वों, पाँच इन्द्रिय-अनुभूति के विषयों, दस इन्द्रियों, मन, बुद्धि, मिथ्या अहंकार तथा समग्र भौतिक शक्ति या विराट् रूप का उल्लेख।

(२) *विसर्ग*—गौण सृष्टि अथवा ब्रह्मा द्वारा ब्रह्माण्ड में चर तथा अचर शरीरों को उत्पन्न करने का कार्य।

(३) *स्थान*—भगवान् विष्णु द्वारा ब्रह्माण्ड का पालन। विष्णु का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है और उनकी महिमा ब्रह्माजी तथा शिवजी से अधिक है, क्योंकि ब्रह्माजी के स्रष्टा तथा शिवजी के संहारकर्ता होने के उपरान्त भी विष्णु पालनकर्ता हैं।

(४) *पोषण*—भगवान् द्वारा भक्तों की विशेष देखभाल तथा सुरक्षा। जिस प्रकार राजा अपने राज्य तथा प्रजा का पालन करता है, किन्तु फिर भी अपने परिवार के लोगों का विशेष ध्यान रखता है, उसी प्रकार भगवान् अपने उन भक्तों की विशेष देखभाल करते हैं, जो पूर्णतया उनके शरणागत हैं।

(५) *ऊति*—सृष्टि की प्रेरणा या प्रेरक शक्ति जो देश, काल तथा पात्र की आवश्यकताओं के अनुसार सारे अन्वेषणों का कारण है।

(६) *मन्वन्तर*—उन मनुओं द्वारा नियंत्रित काल, जो उन जीवों के लिए विधि-विधान सिखाते हैं, जो मानव-जीवन में पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं। मनु द्वारा *मनुसंहिता* में वर्णित नियमों से ऐसी पूर्णता का मार्गदर्शन होता है।

(७) *ईशानुकथा*—भगवान् एवं पृथ्वी पर उनके अवतारों तथा उनके भक्तों

के कार्यकलापों के विषय में शास्त्रीय जानकारी। प्रगतिशील मानव जीवन के लिए इन विषयों से सम्बन्धित शास्त्र अनिवार्य हैं।

(८) *निरोध*—सृष्टि में प्रयुक्त सारी शक्तियों को समेटना। ऐसी शक्तियाँ कारण सागर में नित्य शयन करने वाले भगवान् से उद्भूत हैं। ब्रह्माण्ड, जो उनके श्वास के साथ प्रकट होते हैं, पुन: यथासमय लुप्त हो जाते हैं।

(९) *मुक्ति*—शरीर तथा मन के स्थूल एवं सूक्ष्म आवरणों द्वारा बँधे बद्धजीवों की मुक्ति। आत्मा सारी भौतिक आसक्ति से मुक्त होकर और स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीरों को त्यागकर अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में आध्यात्मिक आकाश (वैकुण्ठ) को प्राप्त कर सकता है और वैकुण्ठ-लोक या कृष्ण-लोक में भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लग सकता है। जब आत्मा अपने मूल वैधानिक पद में स्थित होता है, तो वह मुक्त कहा जाता है। इस भौतिक शरीर में रहते हुए भी आत्मा भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लग सकता है और *जीवन्मुक्त* बन सकता है।

(१०) *आश्रय*—दिव्य परम तत्त्व जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत है, जिन पर हर वस्तु आश्रित है और प्रलय के बाद जिनमें हर वस्तु विलीन होती है। वे सभी के उद्गम एवं आश्रय हैं। *आश्रय* परम ब्रह्म भी कहलाता है, यथा *वेदान्त-सूत्र* में (*अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, जन्माद्यस्य यत:*)। *श्रीमद्भागवत* इस परम ब्रह्म को विशेषत: *आश्रय* रूप में वर्णन करता है। यह आश्रय श्रीकृष्ण ही हैं, अतएव जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि कृष्ण तत्त्व का अध्ययन किया जाये।

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण जगतों का आश्रय मानता है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हर वस्तु के परम स्रोत एवं सबके चरम लक्ष्य हैं।

यहाँ पर दो भिन्न भिन्न सिद्धान्तों पर विचार करना होगा—*आश्रय* अर्थात् शरण प्रदान करने वाला तत्त्व तथा *आश्रित*—अर्थात् शरण लेने की इच्छा रखने वाले। *आश्रित* मूल तत्त्व *आश्रय* के अधीन रहता है। प्रथम नौ श्रेणियाँ, जिनका वर्णन *श्रीमद्भागवत* के प्रथम नौ स्कन्धों में सृष्टि से लेकर मोक्ष पर्यन्त हुआ है, जिसमें पुरुषावतार, अवतार, तटस्था शक्ति या जीव तथा बहिरंगा शक्ति या भौतिक जगत् का समावेश हुआ है—ये सभी *आश्रित* हैं। किन्तु *श्रीमद्भागवत*

की स्तुतियों का लक्ष्य *आश्रयतत्त्व* पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं। *श्रीमद्भागवत* के वर्णन में दक्ष महात्माओं ने बड़े यत्न से अन्य नौ श्रेणियों की पहचान की है—कभी प्रत्यक्ष कथा के रूप में तो कभी अप्रत्यक्ष वर्णनों—यथा कहानियों के रूप में। ऐसा करने का वास्तविक प्रयोजन परम पूर्ण श्रीकृष्ण को भलीभाँति जानना है, क्योंकि भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही सृष्टियाँ श्रीकृष्ण के शरीर पर आश्रित हैं।

आश्रय जानिते कहि ए नव पदार्थ ।
ए नवेर उत्पत्ति-हेतु सेइ आश्रयार्थ ॥ ९३ ॥

आश्रय जानिते कहि ए नव पदार्थ ।
ए नवेर उत्पत्ति-हेतु सेइ आश्रयार्थ ॥ ९३ ॥

आश्रय—परम आश्रय; **जानिते**—जानने के लिए; **कहि**—मैं वर्णन करता हूँ; **ए**—ये; **नव**—नौ; **पद-अर्थ**—श्रेणियाँ; **ए**—ये; **नवेर**—नौ की; **उत्पत्ति**—उत्पत्ति का; **हेतु**—कारण; **सेइ**—वह; **आश्रय**—आश्रय का; **अर्थ**—अर्थ।

अनुवाद

"मैंने हर वस्तु के चरम आश्रय को स्पष्ट रूप से जानने के लिए अन्य नौ श्रेणियों का वर्णन किया है। इन नवों की उत्पत्ति का कारण उनका आश्रय कहा गया है, जो ठीक ही है।

कृष्ण एक सर्वाश्रय, कृष्ण सर्व-धाम ।
कृष्णेर शरीरे सर्व-विश्वेर विश्राम ॥ ९४ ॥

कृष्ण एक सर्वाश्रय, कृष्ण सर्व-धाम ।
कृष्णेर शरीरे सर्व-विश्वेर विश्राम ॥ ९४ ॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **एक**—एक; **सर्व-आश्रय**—सबके आश्रय; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **सर्व-धाम**—सबके धाम; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **शरीरे**—शरीर में; **सर्व-विश्वेर**—सभी ब्रह्माण्डों के; **विश्राम**—आश्रय।

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण सबके आश्रय एवं धाम हैं। सारे ब्रह्माण्ड कृष्ण के शरीर पर आश्रित हैं।

দশমে দশমং লক্ষ্যমাশ্রিতাশ্রয়-বিগ্রহম্ ।
শ্রী-কৃষ্ণাখ্যং পরং ধাম জগদ্ধাম নমামি তৎ ॥ ৯৫ ॥

दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम् ।
श्री-कृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥ ९५ ॥

दशमे—दशवें स्कन्ध में; **दशमम्**—दसवाँ विषय; **लक्ष्यम्**—देखने योग्य; **आश्रित**—आश्रित के; **आश्रय**—आश्रय के; **विग्रहम्**—जो रूप हैं; **श्री-कृष्ण-आख्यम्**—भगवान् कृष्ण कहलाने वाले; **परम्**—परम; **धाम**—धाम; **जगत्-धाम**—ब्रह्माण्ड के धाम; **नमामि**—मैं नमस्कार करता हूँ; **तत्**—उनको।

अनुवाद

"'*श्रीमद्भागवत* का दसवाँ स्कन्ध दसवें लक्ष्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रकट करता है, जो समस्त शरणागत जीवों के आश्रय हैं। वे श्रीकृष्ण कहलाते हैं और वे सारे ब्रह्माण्डों के परम स्रोत (उद्गम) हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक पर की गई श्रीधर स्वामी की टीका से लिया गया है।

কৃষ্ণের স্বরূপ, আর শক্তি-ত্রয়-জ্ঞান ।
যাঁর হয়, তাঁর নাহি কৃষ্ণেতে অজ্ঞান ॥ ৯৬ ॥

কৃষ্ণের স্বরূপ, আর শক্তি-ত্রয়-জ্ঞান ।
যাঁর হয়, তাঁর নাহি কৃষ্ণেতে অজ্ঞান ॥ ৯৬ ॥

कृष्णोर—भगवान् कृष्ण का; **स्व-रूप**—स्वरूप, वास्तविक प्रकृति; **आर**—तथा; **शक्ति-त्रय**—तीन शक्तियों का; **ज्ञान**—ज्ञान; **याँर**—जिनका; **हय**—है; **ताँर**—उसका; **नाहि**—नहीं है; **कृष्णेते**—भगवान् कृष्ण में; **अज्ञान**—अज्ञान।

अनुवाद

"जो श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को तथा उनकी तीन विभिन्न शक्तियों को जानता है, वह उनके विषय में अनजान नहीं रह सकता।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी अपने ग्रंथ *भागवत्-सन्दर्भ* (१६) में बतलाते हैं कि

परम तत्त्व, परम सत्य अपनी उन शक्तियों द्वारा जो मानव मन की चिन्तनशक्ति से परे स्वाभाविक क्रम में कार्यशील होती हैं, अपने चारों दिव्य पहलूओं में एकसाथ विद्यमान रहते हैं—अपना रूप, अपना निर्विशेष तेज, अपने शक्तिमय अंश (जीव) तथा समस्त कारणों के प्रमुख कारण। परम पूर्ण की तुलना सूर्य से की जाती है, क्योंकि वह भी अपने चार पहलूओं में विद्यमान रहता है—सूर्यदेव, उसके चमकीले मंडल का तेज, सूर्यलोक के भीतर सूर्य की किरणें तथा अन्य अनेक वस्तुओं में सूर्य का प्रतिबिम्ब। सीमित कल्पनाओं से दिव्य परम सत्य के अस्तित्व की पुष्टि करने की आकांक्षा पूरी नहीं की जा सकती, क्योंकि वे हमारे सीमित तर्कवादी मस्तिष्कों के दायरे से परे हैं। सत्य की ईमानदार खोज में हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारे लघु मस्तिष्कों के लिए उनकी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। अन्तरिक्ष की खोज के लिए विश्व के महानतम वैज्ञानिकों ने काम किया है, फिर भी भौतिक सृष्टि के मूलभूत ज्ञान से सम्बन्धित ऐसी असंख्य समस्याएँ हैं जो उनका सामना करने वाले वैज्ञानिकों को उलझन में डालने वाली हैं। ऐसा भौतिक ज्ञान आध्यात्मिक प्रकृति से बहुत हटकर है, अतएव परम सत्य के कार्य एवं उनकी व्यवस्थाएँ निश्चय ही अचिन्त्य हैं।

परम सत्य की मूल शक्तियाँ तीन बताई जाती हैं—अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था। अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा परमेश्वर अपने मूल रूप में आध्यात्मिक जगतों को प्रकट करते हैं, जो वैकुण्ठ-लोक कहलाते हैं। इनका अस्तित्व सनातन रूप से बना रहता है और ये भौतिक जगत् के संहार के बाद भी विद्यमान रहते हैं। अपनी तटस्था शक्ति से भगवान् अपने अंशरूपी जीवों में अपना विस्तार करते हैं, जिस प्रकार सूर्य समस्त दिशाओं में अपनी किरणें वितरित करता है। अपनी बहिरंगा शक्ति से भगवान् भौतिक जगत् की सृष्टि करते हैं, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से कुहरा उत्पन्न करता है। भौतिक सृष्टि शाश्वत वैकुण्ठ प्रकृति का विकृत प्रतिबिम्ब है।

परम सत्य की इन तीनों शक्तियों का वर्णन *विष्णु पुराण* में भी हुआ है, जिसमें यह कहा गया है कि जीव गुण में अन्तरंगा शक्ति के समान है, जबकि बहिरंगा शक्ति समस्त कारणों के कारण द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित होती है। भ्रामक शक्ति माया जीव को उसी तरह दिग्भ्रमित करती है, जिस प्रकार

कुहरा सूर्य के प्रकाश को रोककर पैदल चलने वाले को दिग्भ्रमित करता है। यद्यपि माया की शक्ति भगवान् के अंश रूप जीवों की तटस्था शक्ति से निकृष्ट होती है, तो भी इसमें जीवों को नियन्त्रित करने की क्षमता रहती है, जिस तरह कुहरा सूर्य की किरणों के कुछ अंश को आवृत कर लेता है, भले ही वह सूर्य को आवृत नहीं कर सकता। सारे जीव माया से आच्छादित होकर विभिन्न योनियों में विकसित होते हैं, जिनमें उन्हें क्षुद्र चींटी से लेकर ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, ब्रह्मा तक के शरीर प्राप्त होते हैं। निर्विशेष दृष्टि में समस्त कारणों का मुख्य कारण *प्रधान है। यह प्रधान* भगवान् ही हैं, जिन्हें मनुष्य अन्तरंगा शक्ति में प्रत्यक्ष देख सकता है। वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से सर्वव्यापक भौतिक रूप ग्रहण करते हैं। यद्यपि ये तीनों शक्तियाँ—अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था—अन्ततः एक हैं, किन्तु क्रिया में वे भिन्न हैं, जिस तरह कि एक ही विद्युत शक्ति भिन्न भिन्न अवस्थाओं में शीत तथा ऊष्मा उत्पन्न कर सकती है। बहिरंगा तथा तटस्था शक्ति में ऐसी भिन्न अवस्थाएँ पाई जाती हैं, किन्तु मूल अन्तरंगा शक्ति में ऐसी अवस्थाएँ नहीं होतीं, न ही बहिरंगा शक्ति की अवस्थाएँ तटस्था शक्ति में पाई जाती हैं; न इसके विपरीत ही होता है। जो व्यक्ति परमेश्वर की इन समस्त शक्तियों की जटिलताओं को समझ पाता है, वह अल्प ज्ञान के प्रभाव में आकर अनुभववादी मायावादी नहीं बना रह सकता।

कृष्णेर स्वरूपेर हय षड्-विध विलास ।
प्राभव-वैभव-रूपे द्वि-विध प्रकाश ॥९७॥

कृष्णेर स्वरूपेर हय षड्-विध विलास ।
प्राभव-वैभव-रूपे द्वि-विध प्रकाश ॥ ९७॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण का; **स्वरूपेर**—रूप का; **हय**—हैं; **षट्-विध**—छः प्रकार; **विलास**—लीला-रूप; **प्राभव-वैभव-रूपे**—प्राभव एवं वैभव श्रेणियों में; **द्वि-विध**—दो प्रकार के; **प्रकाश**—प्राकट्य।

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण अपने छः मूल विस्तारों में विलास करते हैं। प्राभव तथा वैभव—ये उनके दो प्राकट्य हैं।

तात्पर्य

अब *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के लेखक भगवान् कृष्ण के असंख्य विस्तारों का वर्णन करते हैं। भगवान् मूलत: दो कोटियों में अपना विस्तार करते हैं : *प्राभव* तथा *वैभव*। *प्राभव* रूप श्रीकृष्ण के ही सदृश पूर्णतया शक्तिशाली होते हैं, किन्तु *वैभव* रूप आंशिक तौर पर शक्तिशाली होते हैं। प्राभव रूप शक्तियों के साथ प्रकट होते हैं, जबकि वैभव रूप विभूतियों के साथ प्रकट होते हैं। शक्तिशाली प्राभव रूप के प्राकट्य भी दो प्रकार के होते हैं—क्षणिक तथा शाश्वत। मोहिनी, हंस तथा शुक्ल रूप युगविशेष के परिप्रेक्ष्य में क्षणिक हैं। भौतिक अनुमान के अनुसार अन्य कम प्रसिद्ध प्राभव रूप ये हैं : धन्वन्तरि, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय तथा कपिल। वैभव प्रकाश रुपों में कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ, बलदेव, यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुधामा, योगेश्वर तथा बृहद्भानु रूपों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

অংশ-শক্ত্যাবেশ-রূপে দ্বি-বিধাবতার ।
বাল্য পৌগণ্ড ধর্ম দুই ত' প্রকার ॥ ৯৮ ॥

अंश-शक्त्यावेश-रूपे द्वि-विधावतार ।
बाल्य पौगण्ड धर्म दुइ त' प्रकार ॥ ९८ ॥

अंश—पूर्ण अंश; **शक्ति-आवेश**—शक्त्यावेश; **रूपे**—रूपों में; **द्वि-विध**—दो प्रकार के; **अवतार**—अवतार; **बाल्य**—बाल्यावस्था; **पौगण्ड**—कुमारावस्था; **धर्म**—आयु के लक्षण; **दुइ**—दो; **त'**—निश्चय ही; **प्रकार**—प्रकार।

अनुवाद

"उनके अवतार दो प्रकार के हैं—आंशिक तथा शक्त्यावेश। वे दो अवस्थाओं में प्रकट होते हैं—बाल्य तथा पौगण्ड (कुमारावस्था)।

तात्पर्य

विलास रूपों की संख्या छह है। अवतार दो प्रकार के हैं—शक्त्यावेश तथा अंशावेश। ये अवतार भी प्राभव तथा वैभव प्राकट्यों की कोटि में आते हैं। बाल्य तथा पौगण्ड भगवान् श्रीकृष्ण के दो विशिष्ट स्वरूप हैं, किन्तु उनका

स्थायी स्वरूप तो उनका नित्य किशोर रूप है। मूल भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा सदैव इसी सनातन किशोर रूप में की जाती है।

किशोर-स्वरूप कृष्ण स्वयं अवतारी ।
क्रीड़ा करे एइ छय-रूपे विश्व भरि' ॥९९॥

किशोर-स्वरूप—किशोर रूप जिनका असली रूप है; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **स्वयम्**—स्वयं; **अवतारी**—सभी अवतारों के उद्गम; **क्रीड़ा करे**—वे क्रीड़ा करते हैं; **एइ**—ये; **छय-रूपे**—छः रूपों में; **विश्व**—ब्रह्माण्ड; **भरि'**—पोषण करना।

अनुवाद

"नित्य किशोर रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के उद्गम, मूल भगवान् हैं। वे ब्रह्माण्ड-भर में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए इन छह रूपों में अपना विस्तार करते हैं।

एइ छय-रूपे हय अनन्त विभेद ।
अनन्त-रूपे एक-रूप, नाहि किछु भेद ॥१००॥

एइ—ये; **छय-रूपे**—छः रूपों में; **हय**—हैं; **अनन्त**—अनन्त; **विभेद**—विभेद; **अनन्त-रूपे**—अनन्त रूपों में; **एक-रूप**—एक रूप; **नाहि**—नहीं है; **किछु**—कोई; **भेद**—भेद।

अनुवाद

"इन छः रूपों के असंख्य भेद हैं। यद्यपि वे अनेक हैं, किन्तु सभी एक हैं। उनके बीच कोई अन्तर नहीं है।

तात्पर्य

भगवान् छह विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होते हैं—(१) प्राभव, (२) वैभव, (३) शक्त्यावेश अवतार, (४) अंशावतार, (५) बाल्य तथा (६) पौगण्ड। भगवान् श्रीकृष्ण, जिनका स्थायी स्वरूप किशोर रूप है, इन छहों रूपों में

अपनी लीलाएँ सम्पन्न करके आनन्द-भोग करते हैं। इन छह रूपों में भगवान् के अनन्त रूप होते हैं। सारे जीव भगवान् के विभिन्न-अंश हैं। ये सभी एक ही अद्वितीय भगवान् की विविधता व्यक्त करने वाले अंश हैं।

चिच्छक्ति, स्वरूप-शक्ति, अन्तरङ्गा नाम ।
ताहार वैभव अनन्त वैकुण्ठादि धाम ॥ १०१॥

चिच्छक्ति, स्वरूप-शक्ति, अन्तरङ्गा नाम ।
ताहार वैभव अनन्त वैकुण्ठादि धाम ॥ १०१॥

चित्-शक्ति—आध्यात्मिक शक्ति; **स्वरूप-शक्ति**—स्वरूप शक्ति; **अन्तः-अङ्गा**—अन्तरंगा ; **नाम**—नामक; **ताहार**—उसका; **वैभव**—प्राकट्य; **अनन्त**—अनन्त; **वैकुण्ठ-आदि**—वैकुण्ठ आदि; **धाम**—धाम।

अनुवाद

"चित्-शक्ति, जिसे स्वरूप-शक्ति अथवा अन्तरंगा शक्ति भी कहा जाता है, अनेक रूपों में अपना प्रदर्शन करती है। यह भगवान् के धाम तथा उसके वैभव को धारण करती है।

माया-शक्ति, बहिरङ्गा, जगत्कारण ।
ताहार वैभव अनन्त ब्रह्माण्डेर गण ॥ १०२॥

माया-शक्ति, बहिरङ्गा, जगत्कारण ।
ताहार वैभव अनन्त ब्रह्माण्डेर गण ॥ १०२॥

माया-शक्ति—माया शक्ति; **बहिः-अङ्गा**—बहिरंगा; **जगत्-कारण**—जगत् का कारण; **ताहार**—उसका; **वैभव**—वैभव प्राकट्य; **अनन्त**—असीम; **ब्रह्म-अण्डेर**—ब्रह्माण्डों का; **गण**—गण, समूह।

अनुवाद

"माया शक्ति कहलाने वाली बहिरंगा शक्ति विविध भौतिक शक्तियों से सम्पन्न असंख्य ब्रह्माण्डों की कारण है।

जीव-शक्ति तटस्थाख्य, नाहि यार अन्त ।
मुख्य तिन शक्ति, तार विभेद अनन्त ॥ १०३॥

जीव-शक्ति तटस्थाख्य, नाहि यार अन्त ।
मुख्य तिन शक्ति, तार विभेद अनन्त ॥ १०३॥

जीव-शक्ति—जीव शक्ति; **तट-स्थ-आख्य**—तटस्था नामक; **नाहि**—नहीं है; **यार**—जिसका; **अन्त**—अन्त; **मुख्य**—मुख्य; **तिन**—तीन; **शक्ति**—शक्तियाँ; **तार**—उनका; **विभेद**—विभेद; **अनन्त**—अनन्त।

अनुवाद

"इन दोनों के बीच की तटस्था शक्ति असंख्य जीवों की बनी है। ये ही तीन प्रधान शक्तियाँ हैं, जिनके असंख्य भेद और उपभेद हैं।

तात्पर्य

भगवान् की अन्तरंगा शक्ति, जिसे *चित्-शक्ति* कहते हैं, दिव्य वैकुण्ठ जगत् में विविधता प्रदर्शित करती है। हमारे अतिरिक्त ऐसे असंख्य मुक्त जीव हैं, जो भगवान् के असंख्य स्वरूपों के साथ रहते हैं। भौतिक जगत् बहिरंगा शक्ति को प्रदर्शित करता है, जिसमें जीवों को पूरी स्वतन्त्रता है कि भवबन्धन से छूटकर वे भगवद्धाम वापस जाएँ। *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (६.८) हमें बतलाती है :

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

"भगवान् अद्वितीय हैं। उन्हें स्वयं न तो कुछ करने की आवश्यकता होती है, न ही उनकी भौतिक इन्द्रियाँ होती हैं। न तो कोई उनके तुल्य है, न कोई उनसे बढ़कर है। उनके पास विभिन्न नामों वाली विविध असीम शक्तियाँ हैं, जो उनके भीतर स्वतन्त्र लक्षणों के रूप में विद्यमान रहती हैं और उन्हें पूर्ण ज्ञान, शक्ति तथा लीलाएँ प्रदान करती हैं।"

এ-মত স্বরূপ-গণ, আর তিন শক্তি ।
সভার আশ্রয় কৃষ্ণ, কৃষ্ণে সভার স্থিতি ॥ ১০৪॥

ए-मत स्वरूप-गण, आर तिन शक्ति ।
सभार आश्रय कृष्ण, कृष्णे सभार स्थिति ॥ १०४॥

ए-मत—इस प्रकार; **स्वरूप-गण**—व्यक्तिगत रूप; **आर**—और; **तिन**—तीन; **शक्ति**—शक्तियाँ; **सभार**—सारी सभा के; **आश्रय**—आश्रय; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण में; **सभार**—सारी सभा की; **स्थिति**—स्थिति।

अनुवाद

"ये भगवान् के मुख्य स्वरूप, विस्तार और उनकी तीन शक्तियाँ हैं। ये सभी परम पूर्ण श्रीकृष्ण से प्रकट हैं। ये सब उन्हीं में स्थित हैं।

यद्यपि ब्रह्माण्ड-गणेर पुरुष आश्रय ।
सेइ पुरुषादि सभार कृष्ण मूलाश्रय ॥ १०५ ॥

यद्यपि ब्रह्माण्ड-गणेर पुरुष आश्रय ।
सेइ पुरुषादि सभार कृष्ण मूलाश्रय ॥ १०५ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **ब्रह्म-अण्ड-गणेर**—ब्रह्माण्ड-समूह का; **पुरुष**—पुरुष अवतार; **आश्रय**—आश्रय; **सेइ**—वह; **पुरुष-आदि**—पुरुषावतारों आदि का; **सभार**—सभा का; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **मूल-आश्रय**—मूल आश्रय।

अनुवाद

"यद्यपि तीनों पुरुष सारे ब्रह्माण्डों के आश्रय हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण इन पुरुषों के मूल स्त्रोत हैं।

स्वयं भगवान्कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय ।
परम ईश्वर कृष्ण सर्व-शास्त्रे कय ॥ १०६ ॥

स्वयं भगवान्कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय ।
परम ईश्वर कृष्ण सर्व-शास्त्रे कय ॥ १०६ ॥

स्वयम्—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **सर्व-आश्रय**—सबके आश्रय; **परम**—परम; **ईश्वर**—ईश्वर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **सर्व-शास्त्रे**—सभी शास्त्र; **कय**—कहते हैं।

अनुवाद

"इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण मूल आदि भगवान् एवं अन्य सारे विस्तारों के उद्गम हैं। सारे प्रामाणिक शास्त्र श्रीकृष्ण को परमेश्वर के रूप में स्वीकार करते हैं।

ঈশ্বরঃ পরমঃ কৃষ্ণঃ সচ্চিদানন্দ-বিগ্রহঃ ।
অনাদিরাদির্গোবিন্দঃ সর্ব-কারণ-কারণম্ ॥ ১০৭ ॥

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व-कारण-कारणम् ॥ १०७ ॥

ईश्वरः—ईश्वर; **परमः**—परम; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **सत्**—सनातन अस्तित्व; **चित्**—परम ज्ञान; **आनन्द**—परम आनन्द; **विग्रहः**—जिनका रूप; **अनादिः**—अनादि; **आदिः**—आदि; **गोविन्दः**—भगवान् गोविन्द; **सर्व-कारण-कारणम्**—सभी कारणों के कारण।

अनुवाद

"'गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका कोई उद्गम नहीं है, क्योंकि वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं।'

तात्पर्य

यह *ब्रह्म-संहिता* के पाँचवें अध्याय का पहला श्लोक है।

এ সব সিদ্ধান্ত তুমি জান ভাল-মতে ।
তবু পূর্ব-পক্ষ কর আমা চালাইতে ॥ ১০৮ ॥

ए सब सिद्धान्त तुमि जान भाल-मते ।
तबु पूर्व-पक्ष कर आमा चालाइते ॥ १०८ ॥

ए—ये; **सब**—सब; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **तुमि**—तुम; **जान**—जानते हो; **भाल-मते**—अच्छी तरह; **तबु**—फिर भी; **पूर्व-पक्ष**—आपत्ति; **कर**—तुम उठाते हो; **आमा**—मुझे; **चालाइते**—व्यर्थ की चिन्ता देने के लिए।

अनुवाद

"तुम शास्त्रों के इन सारे सिद्धान्तों को भलीभाँति जानते हो। किन्तु मुझे क्षुब्ध करने के लिए ही सारे तर्क-वितर्क उत्पन्न करते हो।"

तात्पर्य

जिस विद्वान ने शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन किया है, वह श्रीकृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार करने में संकोच नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा व्यक्ति इस विषय पर तर्क करता है, तो समझना चाहिए कि वह अपने प्रतिपक्षियों के मनों को विक्षुब्ध करने के लिए ही ऐसा कर रहा है।

सेइ कृष्ण अवतारी व्रजेन्द्र-कुमार ।
आपने चैतन्य-रूपे कैल अवतार ॥ १०९ ॥

सेइ कृष्ण अवतारी व्रजेन्द्र-कुमार ।
आपने चैतन्य-रूपे कैल अवतार ॥ १०९ ॥

सेइ—वह; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **अवतारी**—सभी अवतारों के उद्गम; **व्रजेन्द्र-कुमार**—व्रज के राजा के पुत्र; **आपने**—प्रत्यक्ष रूप में; **चैतन्य-रूपे**—चैतन्य महाप्रभु के रूप में; **कैल**—किया; **अवतार**—अवतार।

अनुवाद

वे भगवान् श्रीकृष्ण ही व्रजराज के पुत्र कहलाते हैं, जो समस्त अवतारों के स्रोत हैं। वे स्वयं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं।

অতএব চৈতন্য গোসাঞি পরতত্ত্ব-সীমা ।
তাঁরে ক্ষীরোদ-শায়ী কহি, কি তাঁর মহিমা ॥ ১১০ ॥

অতএব চৈতন্য গোসাঞি পরতত্ত্ব-সীমা ।
তাঁরে ক্ষীরোদ-শায়ী কহি, কি তাঁর মহিমা ॥ ১১০ ॥

অতএব—অতএব; **চৈতন্য গোসাঞি**—चैतन्य महाप्रभु; **পর-তত্ত্ব-সীমা**—परम सत्य की सर्वोच्च सीमा; **তাঁরে**—उनको; **ক্ষীরোদ-শায়ী**—क्षीरोदकशायी विष्णु; **কহি**—यदि मैं कहूँ; **কি**—क्या; **তাঁর**—उनकी; **মহিমা**—महिमा।

अनुवाद

अतएव भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु परम सत्य हैं। उन्हें क्षीरोदकशायी विष्णु कहकर पुकारने से उनकी महिमा नहीं बढ़ती।

সেই ত' ভক্তের বাক্য নহে ব্যভিচারী ।
সকল সম্ভবে তাঁতে, যাতে অবতারী ॥ ১১১ ॥

সেই ত' ভক্তের বাক্য নহে ব্যভিচারী ।
সকল সম্ভবে তাঁতে, যাতে অবতারী ॥ ১১১ ॥

সেই—वह; **ত'**—निश्चित रूप से; **ভক্তের**—भक्त का; **বাক্য**—कथन; **নহে**—नहीं है;

व्यभिचारी—व्यतिक्रम; **सकल**—सभी; **सम्भवे**—समभावनाएँ; **ताँते**—उनमें; **याते**—चूँकि; **अवतारी**—सभी अवतारों के उद्गम।

अनुवाद

किन्तु निष्ठावान भक्त के मुख से निकले ऐसे शब्द कभी मिथ्या नहीं हो सकते। उनमें सारी सम्भावनाएँ निहित हैं, क्योंकि वे आदि भगवान् हैं।

অবতারীর দেহে সব অবতারের স্থিতি ।
কেহো কোন-মতে কহে, যেমন যার মতি ॥১১২॥

অবতারীর দেহে সব অবতারের স্থিতি ।
কেহো কোন-মতে কহে, যেমন যার মতি ॥১১২॥

অবতারীর—स्रोत का; **দেহে**—देह में; **সব**—सब; **অবতারের**—अवतारों की; **স্থিতি**—स्थिति; **কেহো**—किसी के; **কোন-মতে**—किसी प्रकार; **কহে**—कहता है; **যেমন**—इस भाँति; **যার**—जिसकी; **মতি**—राय।

अनुवाद

अन्य सारे अवतार मूल भगवान् के आदि शरीर में शक्तिमान के रूप में स्थित हैं। अतएव अपने मत के अनुसार कोई उन्हें किसी भी एक अवतार के रूप में सम्बोधित कर सकता है।

तात्पर्य

भक्त द्वारा भगवान् को उनके पूर्ण विस्तारों के विविध नामों में से किसी एक नाम से सम्बोधित किया जाना विरोधाभास नहीं है, क्योंकि मूल भगवान् में ये सारे विस्तार सन्निहित रहते हैं। चूँकि सारे पूर्ण विस्तार आदि पुरुष में अवस्थित रहते हैं, अतएव वे इन नामों में से किसी एक नाम द्वारा पुकारे जा सकते हैं। *श्रीचैतन्य-भागवत* (मध्य ६.९५) में श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, "मैं क्षीरसागर में शयन कर रहा था, किन्तु नाड़ा (श्री अद्वैत प्रभु)' की पुकार ने मुझे जगा दिया।" यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने क्षीरोदकशायी विष्णु रूप का उल्लेख कर रहे हैं।

কৃষ্ণকে কহয়ে কেহ—নর-নারায়ণ ।
কেহো কহে, কৃষ্ণ হয় সাক্ষাত্ত্রামন ॥১১৩॥

कृष्णके कहये केह—नर-नारायण ।
केहो कहे, कृष्ण हय साक्षाद्वामन ॥ ११३ ॥

कृष्णके—भगवान् कृष्ण; **कहये**—कहते हैं; **केह**—कोई; **नर-नारायण**—नर-नारायण; **केहो**—कोई; **कहे**—कहते हैं; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **हय**—हैं; **साक्षात्**—साक्षात्; **वामन**—भगवान् वामन।

अनुवाद

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण साक्षात् नर-नारायण हैं। अन्य लोग कहते हैं कि वे साक्षात् वामन हैं।

কেহো কহে, কৃষ্ণ ক্ষীরোদ-শায়ী অবতার ।
অসম্ভব নহে, সত্য বচন সবার ॥ ১১৪ ॥

केहो कहे, कृष्ण क्षीरोद-शायी अवतार ।
असम्भव नहे, सत्य वचन सबार ॥ ११४ ॥

केहो—कोई; **कहे**—कहता है; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **क्षीरोद-शायी**—क्षीरोदकशायी विष्णु; **अवतार**—अवतार; **असम्भव**—असम्भव; **नहे**—नहीं है; **सत्य**—सत्य; **वचन**—वचन; **सबार**—सबका।

अनुवाद

कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण क्षीरोदकशायी विष्णु के अवतार हैं। इनमें से कोई भी कथन असम्भव नहीं है। प्रत्येक कथन अन्यों की ही तरह सत्य है।

तात्पर्य

लघु भागवतामृत (५.३८३) में आया है कि :

अतएव पुराणादौ केचिन् नर-सखात्मताम्
महेन्द्रानुजतां केचित् केचित् क्षीराब्धि-शायिताम्।
सहस्रशीर्षतां केचित् केचिद् वैकुण्ठनाथताम्
ब्रूयुः कृष्णस्य मुनयस्तत्तद्वृत्त्यनुगामिनः॥

"आदि भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध के अनुसार सारे पुराण उनका विविध नामों से वर्णन करते हैं। कभी वे नारायण कहे जाते

हैं, कभी उपेन्द्र (वामन), स्वर्ग के राजा इन्द्र के छोटे भाई, तो कभी क्षीरोदकशायी विष्णु। कभी वे सहस्र फन वाले शेषनाग कहलाते हैं, तो कभी वैकुण्ठपति कहलाते हैं।"

केहो कहे, पर-व्योमे नारायण हरि ।
सकल सम्भवे कृष्णे, याते अवतारी ॥ ११५॥

केहो कहे, पर-व्योमे नारायण हरि ।
सकल सम्भवे कृष्णे, याते अवतारी ॥ ११५॥

केहो—कोई; **कहे**—कहता है; **पर-व्योमे**—आध्यात्मिक विश्व में; **नारायण**—भगवान् नारायण; **हरि**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **सकल सम्भवे**—सारी सम्भावनाएँ; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण में; **याते**—चूँकि; **अवतारी**—सभी अवतारों के उद्गम।

अनुवाद

कुछ उन्हें हरि या दिव्य लोक का नारायण कहते हैं। कृष्ण के लिए सब कुछ सम्भव है, क्योंकि वे आदि भगवान् हैं।

सब श्रोता-गणेर करि चरण वन्दन ।
ए सब सिद्धान्त शुन, करि' एक मन ॥ ११६॥

सब श्रोता-गणेर करि चरण वन्दन ।
ए सब सिद्धान्त शुन, करि' एक मन ॥ ११६॥

सब—सब; **श्रोता-गणेर**—श्रोतागण का; **करि**—मैं करता हूँ; **चरण**—चरणकमल में; **वन्दन**—प्रार्थना; **ए**—ये; **सब**—सब; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त, निष्कर्ष; **शुन**—कृपया सुनो; **करि'**—करके; **एक**—एक; **मन**—मन।

अनुवाद

मैं इस कथा को सुनने या पढ़ने वाले समस्त लोगों के चरणों में नमस्कार करता हूँ। कृपा करके इन सारे कथनों के सार को ध्यान से सुनें।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक अपने पाठकों के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके विनीत भाव से अनुरोध करते हैं कि वे परम सत्य-विषयक इन निष्कर्षों

को मनोयोग से सुनें। ऐसे तर्कों को सुनने से किसी को चूकना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसे ज्ञान से ही मनुष्य कृष्ण को पूरी तरह जान सकता है।

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस ।
इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस ॥ ११७॥

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस ।
इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस ॥ ११७॥

सिद्धान्त—सिद्धान्त; **बलिया**—विचार करके; **चित्ते**—मन में; **ना कर**—न करो; **अलस**—आलसी; **इहा**—यह; **हइते**—से; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण में; **लागे**—अवस्थित हो जाता है; **सुदृढ़**—सुदृढ़; **मानस**—मन।

अनुवाद

निष्ठापूर्ण जिज्ञासु को चाहिए कि ऐसे सिद्धान्तों की व्याख्या को विवादास्पद मानकर उनकी उपेक्षा न करे, क्योंकि ऐसी व्याख्याओं से मन दृढ़ होता है। इस तरह मनुष्य का मन श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त होता है।

तात्पर्य

ऐसे अनेक जिज्ञासु हैं, जो *भगवद्गीता* पढ़ने के उपरान्त भी अपूर्ण ज्ञान के कारण कृष्ण को सही ढंग से नहीं समझ पाते और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे एक सामान्य ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। मनुष्य को कृष्ण विषयक सत्य को समझने में विशेष सतर्क रहना चाहिए। यदि आलस्यवश कोई व्यक्ति कृष्ण के विषय में ठीक से नहीं समझ पाता, तो वह भक्ति सम्प्रदाय के विषय में उन लोगों की तरह भ्रमित हो सकता है, जो अपने आपको उन्नत भक्त घोषित करते हैं और मुक्तात्माओं द्वारा यदाकदा प्रदर्शित किये जाने वाले दिव्य लक्षणों की नकल करते हैं। यद्यपि अदीक्षित व्यक्ति को भक्त बनने के लिए प्रेरित करने में विचारों तथा तर्कों का सहारा लेना सर्वोपयुक्त विधि है, लेकिन भक्ति में लगे नवदीक्षितों को शास्त्रों, प्रामाणिक भक्तों तथा गुरु के दृष्टिकोण के माध्यम से सतर्कता के साथ कृष्ण को समझना चाहिए। ऐसे अधिकारियों के मुख से श्रीकृष्ण के विषय में श्रवण किये बिना श्रीकृष्ण की भक्ति में प्रगति नहीं हो सकती। प्रामाणिक शास्त्रों में भक्ति प्राप्त करने के नौ

साधनों का उल्लेख है, जिसमें सबसे पहला साधन किसी प्रामाणिक अधिकारी से श्रवण करना है। भक्ति का बीज श्रवण तथा कीर्तन के जल से सींचे बिना अंकुरित नहीं हो सकता। मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिकता की दृष्टि से उन्नत स्रोतों से विनीत होकर दिव्य सन्देश को प्राप्त करे और अपने तथा अपने श्रोताओं के लाभ के लिए उसी सन्देश का पुनः उच्चारण करे।

जब ब्रह्मा ने अनुभववादी दर्शन तथा सकामकर्मों के अनुशीलन से रहित शुद्ध भक्तों की स्थिति का वर्णन किया, तो उन्होंने भक्ति-मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों से श्रवण करने की विधि की संस्तुति की। ऐसे मुक्तात्मा, जो वास्तविक दिव्य ध्वनि का उच्चारण करने में समर्थ हैं, उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए मनुष्य भक्ति की सर्वोच्च अवस्था तक पहुँच सकता है और इस तरह *महाभागवत* बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को जो उपदेश दिया (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २२.६५), उससे हम सीखते हैं कि :

शास्त्रयुक्त्ये सुनिपुण, दृढ़श्रद्धा याँर।
"उत्तम अधिकारी" सेइ तारये संसार॥

"जो व्यक्ति शास्त्रों के निष्कर्षों को समझने में निपुण होता है और जो भगवान् के लिए पूर्णतः समर्पित हो जाता है, वह दूसरों को वास्तव में भवबन्धन से छुड़ाने में समर्थ है।" *उपदेशामृत* (३) में श्रील रूप गोस्वामी उपदेश देते हैं कि भक्तियोग में तेजी से प्रगति करने के लिए मनुष्य को अत्यधिक तत्पर रहना चाहिए और प्रामाणिक शास्त्रों में निर्दिष्ट तथा गुरु द्वारा बताए गये कर्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए दृढ़तापूर्वक प्रयास करना चाहिए। मुक्तात्माओं का अनुसरण तथा शुद्ध भक्तों का संग ऐसे कार्यों को समृद्ध करते हैं।

ऐसे नकली भक्त जो अपने आपको उन्नत वैष्णव के रूप में विज्ञापित करना चाहते हैं और इस तरह पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुकरण तो करते हैं, किन्तु उनके सिद्धान्तों का पालन नहीं करते, वे *श्रीमद्भागवत* (२.३.२४) के शब्दों में पाषाण-हृदय वाले कहे गये हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने उनकी ऐसी दशा पर यह टिप्पणी की है—*बहिरश्रुपुलकयोः सतोरपि यद्धृदयं न विक्रियेत तदश्मसारम् इति कनिष्ठाधिकारिणाम् एव अश्रुपुलकादि मत्त्वेऽपि*

अश्मसारहृदयतया निन्दैषा—"जो लोग अभ्यासवश अश्रु गिराते हैं, किन्तु जिनके हृदयों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, वे निम्नतम कोटि के पाषाण-हृदयी भक्त कहलाते हैं। कृत्रिम विधि से प्रेरित होकर उनका नकली क्रन्दन सदैव निन्दनीय है।" उपर्युक्त वांछित हृदय परिवर्तन भक्ति के प्रतिकूल कुछ भी करने में संकोच के रूप में दृष्टिगत होता है। ऐसा हृदय-परिवर्तन लाने के लिए श्रीकृष्ण तथा उनकी शक्तियों के विषय में निर्णायक व्याख्या की चर्चा करना नितान्त आवश्यक है। छद्म भक्त ऐसा सोच सकते हैं कि केवल आँसू बहाने से ही मनुष्य को दिव्य पद प्राप्त हो जायेगा, भले ही उसके हृदय में वास्तविक परिवर्तन न हुआ हो। किन्तु दिव्य अनुभूति के बिना ऐसा अभ्यास व्यर्थ है। दिव्य ज्ञान के निष्कर्ष से विहीन छद्म भक्त सोचते हैं कि बनावटी आँसू बहाने से उनका उद्धार हो जायेगा। इसी तरह से अन्य छद्म भक्त सोचते हैं कि पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों को अध्ययन करने का परामर्श उचित नहीं है, जिस तरह शुष्क दर्शनों का अध्ययन उचित नहीं है। किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण करते हुए श्रील जीव गोस्वामी ने शास्त्रों के निष्कर्षों को *षट्-सन्दर्भ* नामक छः सन्दर्भ ग्रंथों में दृढ़ता से लिपिबद्ध किया है। ऐसे नकली भक्त जिन्हें ऐसे निष्कर्षों का बहुत कम ज्ञान होता है, वे स्वरूपसिद्ध भक्तों द्वारा प्रदत्त भक्ति के अनुकूल निर्देशों को स्वीकार करने में उत्साह नहीं दिखलाते, अतः वे शुद्ध भक्ति सम्पन्न करने में असफल रह जाते हैं। ऐसे नकली भक्त उन निर्विशेषवादियों के समान हैं, जो भक्ति को साधारण सकाम कर्मों से बेहतर नहीं मानते।

চৈতন্য-মহিমা জানি এ সব সিদ্ধান্তে ।
চিত্ত দৃঢ় হঞা লাগে মহিমা-জ্ঞান হৈতে ॥১১৮॥

चैतन्य-महिमा जानि ए सब सिद्धान्ते ।
चित्त दृढ़ हञा लागे महिमा-ज्ञान हैते ॥११८॥

चैतन्य-महिमा—चैतन्य महाप्रभु की महिमा; **जानि**—मैं जानता हूँ; **ए**—इन; **सब**—सब; **सिद्धान्ते**—सिद्धान्तों से; **चित्त**—मन; **दृढ़**—दृढ़; **हञा**—होना; **लागे**—दृढ़ हो जाता है; **महिमा-ज्ञान**—महिमा का ज्ञान; **हैते**—से।

अनुवाद

ऐसे निर्णायक अध्ययन द्वारा मैं चैतन्य महाप्रभु की महिमा को जानता हूँ। इन महिमाओं को जान लेने से ही मनुष्य बलवान बन सकता है और उनके प्रति अनुराग में सुस्थिर हो सकता है।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण के विषय में ज्ञान के सही निर्णय तक पहुँचकर और आचार्यों के निष्कर्षों का प्रामाणिक अध्ययन करके ही श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमाओं को जाना जा सकता है।

চৈতন্য-প্রভুর মহিমা কহিবার তরে ।
কৃষ্ণের মহিমা কহি করিয়া বিস্তারে ॥ ১১৯॥
চৈতন্য-প্রভুর মহিমা কহিবার তরে ।
কৃষ্ণের মহিমা কহি করিয়া বিস্তারে ॥ ১১৯॥

চৈতন্য-প্রভুর—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **महिमा**—महिमाएँ; **कहिबार तरे**—कहने के लिए; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **महिमा**—महिमाएँ; **कहि**—मैं कहता हूँ; **करिया**—करके; **विस्तारे**—विस्तार से।

अनुवाद

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु का महिमा-वर्णन करने के लिए ही श्रीकृष्ण की महिमाओं का विस्तार से वर्णन करने का प्रयास किया है।

চৈতন্য-গোসাঞির এই তত্ত্ব-নিরূপণ ।
স্বয়ং-ভগবান্‌কৃষ্ণ ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥ ১২০॥
চৈতন্য-গোসাঞির এই তত্ত্ব-নিরূপণ ।
স্বয়ং-ভগবান্‌কৃষ্ণ ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥ ১২০॥

चैतन्य-गोसाञिर—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **एइ**—यह; **तत्त्व**—सत्य का; **निरूपण**—निरूपण; **स्वयम्-भगवान्**—स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—ब्रजेन्द्र के पुत्र।

अनुवाद

निष्कर्ष यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं व्रजराज के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं।

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে যার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ।।১২১।।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ १२१ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—के चरणकमलों पर; **ग्रार**—जिनके; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—चैतन्य चरितामृत ग्रंथ; **कहे**—वर्णन करता है; **कृष्ण-दास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए एवं उनकी दया की सदा आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत के आदि लीला, द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्णन भगवान् के रूप में किया गया है।